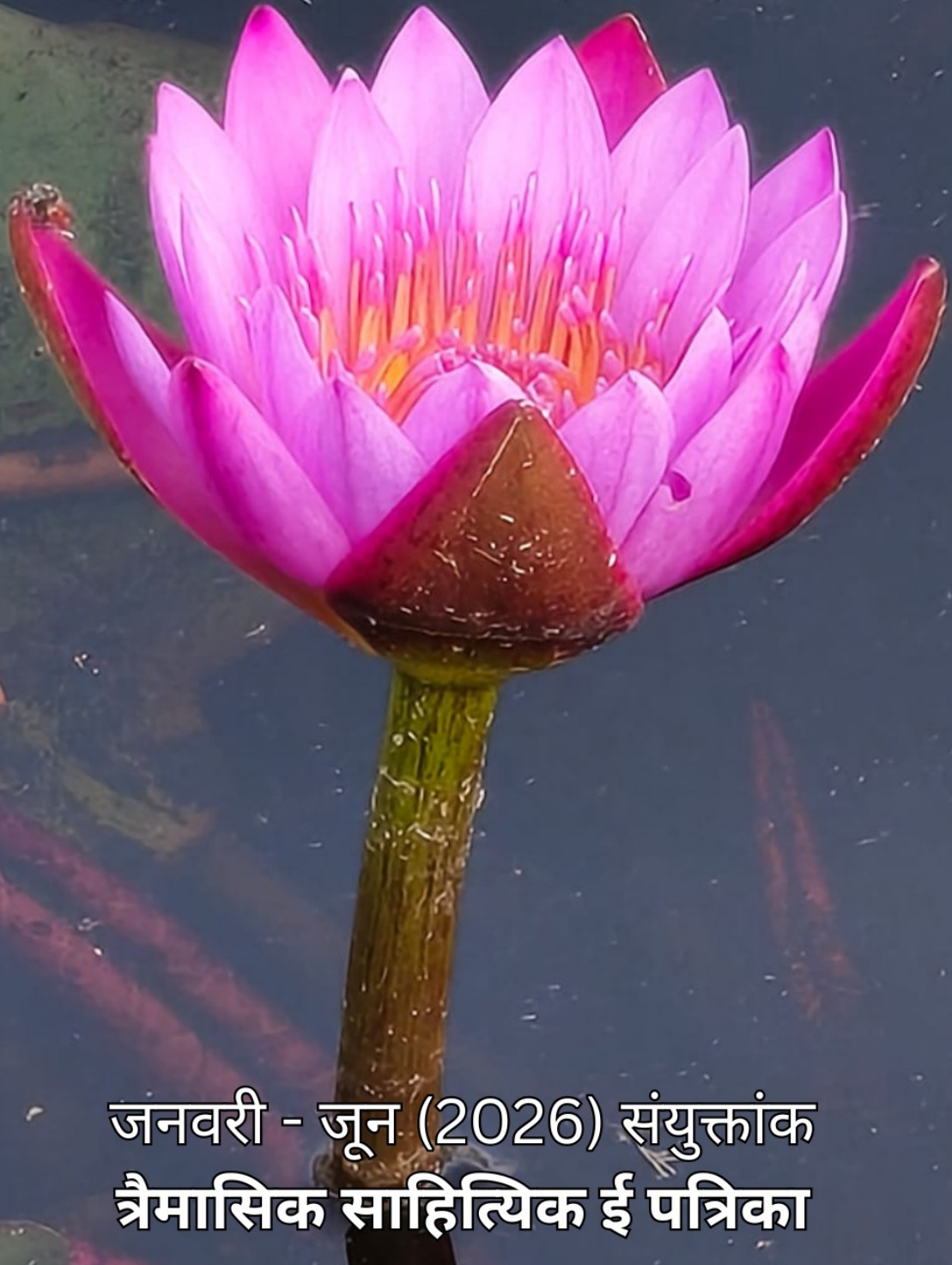




मानवी



जनवरी - जून (2026) संयुक्तांक
त्रैमासिक साहित्यिक ई पत्रिका

कविता सिंह

प्रधान संपादक-मानवी



सब लड़कियाँ अच्छी होती हैं पर

अचानक
उनमें से ही कोई एक दिन
खराब बन जायेगी

धीरे धीरे
उसका वंश बढ़ने लगेगा

अच्छी लड़कियों का
खराब होना बेहद जरूरी है
खुद को पहचानने के लिए

आवाज उठाना सीखने के लिये
निर्भय होने का सुख जानने के लिए

इतिहास के जंगल में
हर बार

कुछ लड़कियाँ
खराब निकाल जाएँगी

बचे-खुचे इतिहास में
जिन्दा बचे रहने के लिए...

– कविता सिंह



त्रैमासिक ई पत्रिका
वर्ष- 5 ,अंक – 1 और 2 (संयुक्तांक : जनवरी—जून 2026)

प्रधान सम्पादक : कविता सिंह

सम्पादक : राजेश कुमार सिंह

आवरण चित्र ,वेबसाइट निर्माण एवं अद्यतनीकरण : तेजस सिंह

ई मेल : manvipatrika@gmail.com

Website : <http://www.manvipatrika.co.in/>

संरक्षक

श्रीमती जानकी किशोरी देवी एवं

श्री राम चन्द्र सिंह

पता -कार्यकारी - 2B, 2nd फ्लोर ,इंडियन बैंक एक्सिकिटिव क्वार्टर ,9, एलडम्स रोड ,अलवरपेट , चेन्नई – 600018

स्थायी - 274/x ,शक्ति नगर कालोनी ,आरोग्य मंदिर ,गोरखपुर -273003

दूरभास -9833775798

मानवी पत्रिका में प्रकाशित लेख /काव्य आदि रचनकारों के अपने विचार हैं ,जिनसे प्रकाशक/ संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय क्षेत्र गोरखपुर रहेगा। रचना की मौलिकता का दायित्व रचनाकार का है पत्रिका से जुड़े सभी पद अवैतनिक हैं।

पत्रिका प्रधान संपादक कविता सिंह जी के स्वामित्व में आन-लाइन प्रकाशित होती है। पत्रिका के वेबसाइट से सभी अंकों का पीडीएफ डाउनलोड किया जा सकता है।

पत्रिका निःशुल्क है , पत्रिका का उद्देश्य हिन्दी साहित्य की सेवा है।

पत्रिका आप सभी मित्रों से रचनात्मक सहयोग के अलावा अर्थ-सहयोग का भी निवेदन करती है, यह स्वैच्छिक है आप पेटिएम नं - 9833775798 पर स्वेच्छा से यथासंभव धनराशि सहयोग के रूप में अंतरित कर सकते हैं।



इस अंक में

संपादक की कलम से – 5/6

काव्य धरोहर

- 7- अज्ञेय
7- विनोद कुमार शुक्ल

लेख /आलेख /संस्मरण

- 8- कृष्ण कुमार यादव - लोक संवेदना के यथार्थ सर्जक: नागार्जुन
13- सलिल सरोज - वर्तमान काल में प्रेमचंद और उनकी कृतियों की प्रासंगिकता
16- वीरेंद्र बहादुर सिंह- शिशिर की ओढ़नी में पतझड़ का प्रेम
18- आकांक्षा यादव- श्री सोमनाथ महादेव मंदिर
21- डॉ.अजय कुमार ओझा - ऐसा व्यक्तित्व ही है डॉ. इन्द्र सेंगर जी का...
23- डॉ नन्दकिशोर साह - हिंदी के पीछे विशाल दुनिया
25- सतीश कुमार नारनौंद - हिंदी गगन में प्रेमचंद का आलोक
28- राजेंद्र परदेसी - दिनकर की कविता में युगबोध
33- कादंबरी मेहरा - भारत का उत्तरापथ
41- गिरेन्द्रसिंह भदौरिया "प्राण" - कविता और काम का कोई गुरु नहीं होता

हास्य /व्यंग्य

- 32- महेंद्र तिवारी- हमें थूकने की आज्ञादी चाहिए
39- दिलीप कुमार- माफी की दुकान

कहानी

- 43- महेश शर्मा - प्यार का पछतावा
50- गोवर्धन यादव – अजनबी
54- श्यामल बिहारी महतो –प्यार का दहन
58- दीपक कुमार – माट साहेब
59- राजेंद्र कुमार सिंह- फलवाली बूढ़ी माँ
60- वाजिद हुसैन – सोने की हथकड़ी

लघुकथा

- 27- अशोक आनन - नौकर- नौकरनी
40- नील मणि - पति परमेश्वर
49- वैदेही कोठारी - ब्रांडेड स्वेटर
62- डॉ संजय राँय – बिरादरी,गंगा
63- संतोष सुपेकर- फायदा ही फायदा ,वही बात
64- डॉ. सुरेश पुष्पाकर – परदेश
65- अखलाक अहमद ज़ई - फितरा-जकात , बुज़दिली
66- उषा कुशवाहा – पापा
66- राम मूरत 'राही'- जब से

काव्य /हाइकु /गज़ल

- 2- कविता सिंह – बुरी लड़कियां
15- प्रवीण पारीक 'अंशु'- दोहे
17- भानु झा - गजल
17- -भाऊराव महंत - गजल
24- डॉ संध्या शुक्ल 'मृदुल' - मैं भारत की नारी हूँ
24 - डॉ मीरा सिंह "मीरा"- प्रेम सिखा जाओ
31- रामस्वरूप मूंदड़ा – गजल
53- रंजनालता - थकन
57- विजय कनौजिया- प्यार की थपकी दे जाती है
61- डॉ दलजीत कौर – बांझ धरती
67- योगेंद्र पांडेय – रात्रि की कवितायें
68- सुरेन्द्र पाल सोनी 'काकड़ौद'- खून टपकता है ,नारजगी के मोतियाबिंद
69- नंदन पंडित – रेती में बसंत
69- अनीक कुमार मिश्र – गाँव
70- निरूपमा सिंह – एक आवाज उठी है
70- प्रोमिला पुष्प भारद्वाज – अनबूझ
71- मोनिका डागा 'आनंद'- स्वास्थ्य श्रेष्ठ संपदा,समय
72- राजपाल सिंह गुलिया –नवगीत
72 - नरेंद्र कुमार – दोहे
73- नवीन माथुर पंचोली – गजल
74- डॉ नीना छिब्वर- मोगरा ,रात की रानी पारिजात
74- श्रीमती वेदवती 'वेदी'- प्रकृति
75- मनोज शाह मानस – आओ थोड़ा जी लेते हैं,एक तूफान
76- कल्पना पौडेल 'जिज्ञासु' - सीता की अग्नि
77- डॉ० जोनाली बरुवा- वृद्ध वृक्ष का.., पानी में डूबता..
80- टीकम चन्दर ढोडरिया- कुण्डलिया-छन्द
82- वसंत जमशेदपुरी- वासंती कुंडलियाँ
84- कश्मीरी लाल चावला – हाइकु

पुस्तक समीक्षा -

- 78- डॉ नैब सिंह मंडेर - गाएगा युग : हाइकु में जीवन की धड़कन
79- गोपेंद्र कु सिन्हा गौतम - एक शिक्षक की आत्मकथा 'उसर में फूल'
81- डॉ सुबोध ठाकुर – प्रेम के अंतराल
83- सुरेश रायकवार - मानवीय संवेदनाओं की रचनाएं-- 'शब्द शाश्वत हैं'
85- डॉ. ज़ियाउर रहमान जाफ़री- राहतों के नाम पर बेचैनियां: मौजूदा मसअलों से गुज़रती हुई गज़ल



कुछ मेरी भी....



युद्ध और कविता

कितना अजीब लगता है, जब आप समझ जाते हैं कि युद्ध का शांति से कोई लेना-देना नहीं है। युद्ध को हमेशा अंतिम विकल्प के रूप में देखा गया है। पर इतिहास बताता है कि कोई भी युद्ध कभी अंतिम युद्ध रहा ही नहीं, रामायण, महाभारत, विश्व युद्ध इस बात के साक्षी हैं। अभी देखिये रूस और यूक्रेन का युद्ध पिछले चार सालों से चल ही रहा है। कितने बेघर हुए, कितने अनाथ हुए, कितने लोगों ने दूसरे देशों में आश्रय लिया। और अभी भी युद्ध चल ही रहा है और वो भी बेनतीजा। इस्राइल और ईरान का ही युद्ध देख लीजिये। युद्ध का असली कारण – तेल है, सत्ता है, वर्चस्व है, पागलपन है, क्या है सब अंधेरे में है, पर जो सच है वो ये है कि लाखों लोग अपने प्राण गवा चुके हैं, बेघर हो चुके हैं, अनाथ हो चुके हैं। इसका कोई भी जबाब इन युद्ध प्रेमियों के पास नहीं है। दरअसल युद्ध कभी शांति के लिए लड़ा ही नहीं गया। युद्ध आदिम अहंकार और अपना वर्चस्व बनाये रखने की लड़ाई है। जिसे ताकतवर अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए करते आ रहे हैं। महाभारत का युद्ध इसका उदाहरण है। कृष्ण ने पूरी कोशिश की थी, कि किसी भी युक्ति से युद्ध को टाला जा सके, युद्ध से पहले कृष्ण ने हस्तिनापुर की सभा में जाकर संधि का पूरा प्रयास किया था। कृष्ण ने पांडवों की ओर से केवल पाँच गाँवों की मांग रखी थी ताकि बड़े रक्तपात और विनाश को टाला जा सके। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने अपने खंड काव्य 'रश्मिर्माती' में इस प्रसंग का प्रभावी वर्णन किया है। "दे दो केवल पांच ग्राम, रख लो अपनी धरती तमाम। दुर्योधन वह भी दे न सका, उल्टे हरि को बांधने चला। जो था असाध्य उसको साधने चला।" दुर्योधन के अहंकार और अस्वीकृति के कारण शांति के सारे रास्ते बंद हो गए, जिसके बाद युद्ध अनिवार्य हो गया। दुर्योधन अपनी मनमानी अपनी मनमर्जी, दंभी स्वभाव और अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए स्वयं को अपने रिश्तेदारों को अपने भाई बंधुओं को युद्ध की विभीषिका में झोंक देता है। और अंत में सभी काल के गाल में समा जाते हैं। बची रह जाती है, खून से सनी पृथ्वी और पृथ्वी पर विलाप करती स्त्रियाँ अनाथ बच्चे, जिनका भविष्य अंधकारमय है।

इतिहास इस बात के अनेकों साक्ष्य देता है कि जब जब युद्ध हुआ है, तब तब एक सभ्यता, एक संस्कृति एक देश अपने विकास से अपनी उच्चता के शिखर से कई वर्ष पीछे चला जाता है। आदिकाल से ही कवियों ने युद्ध को अपने तरीके से देखा है, और जो दुनिया नहीं देख पाती है, जो दर्द युद्ध से उपजता है, जो कभी न भरने वाला शून्य प्रभावितों के जीवन में बचा रह जाता है, लाचार और बेबस बच्चों महिलाओं कि पीड़ा को कवियों ने अपनी कलम से आवाज दी है। इन सभी दर्द, दुख, न भरने वाले घावों को कवियों कि दृष्टि ने दुनिया के सामने रखा है। कवियों की संवेदना, युद्ध उसकी बर्बरता, उससे प्रभावित आम जनो के प्रति फूट पड़ती है, तब बर्तोल्ट ब्रेख्त आम आदमी के हवाले से लिखते हैं - युद्ध जो आ रहा है/पहला युद्ध नहीं है।/इसे पहले भी युद्ध हुए थे।/पिछला युद्ध जब खत्म हुआ/तब कुछ विजेता बने और कुछ विजित-विजितों के बीच आम आदमी भूखों मरा/विजेताओं के बीच भी मरा वह भूखा ही।

एक चीनी कवि ली पो ने अपने अनुभवों और उस युग की राजनीतिक उथल-पुथल और युद्ध के अंत के बारे में लिखा। युद्ध के मैदान में पुरुष एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते मर जाते हैं; पराजितों के घोड़े आकाश की ओर विलाप करते हुए कराहते हैं।

साहिर लुधियानवी साहिब अपने शेर में सच बयान करते हैं
जंग तो खूद ही एक मसला है, जंग क्या मसलों का हल देगी,
आज आग और खून देगी, कल भूख और इफ्लास (गरीबी) देगी।
आमिर हमज़ा अपनी कविता – “एक कवि के बयान में लिखते हैं:

वह अब दर्द में था। वह अब कविता में नहीं था।
अब दर्द उसमें था। अब कविता उसमें नहीं थी।
और यों नवंबर के मातम में चेहरे पर खून के छीटे लिए
जब आसमान से बम-ओ-बारूद की शकल में
बच्चों के सिर पर मुसलसल बरस रही थी मौत

प्रथम विश्व युद्ध के बारे में सैसून अपनी पुस्तक “सिगफ्रीड सैसून की युद्ध कविताएँ” में क्रोध और तीक्ष्णता के साथ लिखते हैं। उनकी कविताएँ देशभक्तिपूर्ण कल्पनाओं को नकारती हैं और इसके बजाय युद्ध की क्रूर निरर्थकता को उजागर करती हैं।

“विल्फ्रेड ओवेन की युद्ध कविताएँ” विल्फ्रेड ओवेन द्वारा रचित युद्ध कि विभीषिका और शोक से भरी रचनाओं का संग्रह है। युद्ध कवियों में गिने जाने वाले ओवेन ने खाई युद्ध की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक भयावहता को अत्यंत स्पष्टता से चित्रित किया। उनकी कविता गैस हमलों, शमन, क्षत-विक्षत शरीरों और मासूमियत खो चुके थके-हारे नौजवानों से भरी हुई है। एडवर्ड थॉमस, ब्रायन टर्नर, जॉन स्टालवर्थी, जॉन जेफ़कॉक आदि ने युद्ध और उसकी भयावहता पर अपनी कलमें चलायी है। युद्ध समाप्त होने के बाद आत्मा पर क्या प्रभाव, मन पर क्या प्रभाव छोड़ जाता है। इसकी यात्रा है ये सभी पुस्तकें। हम सभी इस बात से इत्तिफाक रखते हैं कि “युद्ध किसी समस्या कि समाधान नहीं है बल्कि स्वयं में एक समस्या है”

साथियों पत्रिका के अंक में हुए अतिशय विलंब के लिए पत्रिका परिवार क्षमाप्रार्थी है। स्थान परिवर्तन और अस्वस्थता ही मुख्य वजहें हैं इस देरी की। प्रस्तुत अंक जनवरी – जून (2026) संयुक्त अंक के रूप में प्रकाशित कर रहें हैं, आगे के सभी अंक नियमित रूप से प्रकाशित होते रहेंगे। पत्रिका परिवार आप सभी रचनाकारों का आभारी है, आप सभी ने हम पर प्रेम और विश्वास बनाएँ रखा। कठिन समय में आपका प्रेम ही हमारा संबल बना।

आप सभी का स्नेह पत्रिका को ऐसे ही मिलता रहें।

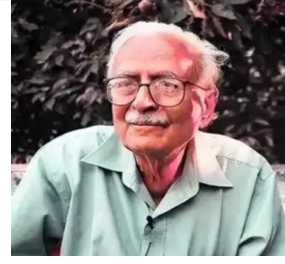
आपका शुभेच्छू

राजिंदर सिंह





काव्य धरोहर



अज्ञेय

मन बहुत सोचता है कि उदास न हो
पर उदासी के बिना रहा कैसे जाए?

शहर के दूर के तनाव-दबाव कोई सह भी ले,
पर यह अपने ही रचे एकांत का दबाव सहा कैसे जाए!

नील आकाश, तैरते-से मेघ के टुकड़े,
खुली घास में दौड़ती मेघ-छायाएँ,

पहाड़ी नदी : पारदर्श पानी,
धूप-धुले तल के रंगारंग पत्थर,

सब देख बहुत गहरे कहीं जो उठे,
वह कहूँ भी तो सुनने को कोई पास न हो—

इसी पर जो जी में उठे वह कहा कैसे जाए!
मन बहुत सोचता है कि उदास न हो, न हो,

पर उदासी के बिना रहा कैसे जाए!

विनोद कुमार शुक्ल

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था
व्यक्ति को मैं नहीं जानता था

हताशा को जानता था
इसलिए मैं उस व्यक्ति के पास गया

मैंने हाथ बढ़ाया
मेरा हाथ पकड़कर वह खड़ा हुआ

मुझे वह नहीं जानता था
मेरे हाथ बढ़ाने को जानता था

हम दोनों साथ चले
दोनों एक दूसरे को नहीं जानते थे

साथ चलने को जानते थे।

लोक संवेदना के यथार्थ सर्जक: नागार्जुन



कृष्ण कुमार यादव

भारत सरकार में वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी। प्रशासन के साथ-साथ साहित्य, लेखन और ब्लॉगिंग के क्षेत्र में भी प्रवृत्त। विभिन्न विधाओं में अब तक कुल 7 पुस्तकें प्रकाशित- 'अभिलाषा' (काव्य-संग्रह, 2005), 'अभिव्यक्तियों के बहाने' व 'अनुभूतियाँ और विमर्श' (निबंध-संग्रह, 2006 व 2007), इत्यादि

सम्मान : उ.प्र. के मुख्यमंत्री द्वारा "अवध सम्मान", पश्चिम बंगाल के राज्यपाल द्वारा "साहित्य-सम्मान", छत्तीसगढ़ के राज्यपाल द्वारा "विज्ञान परिषद शताब्दी सम्मान", परिकल्पना समूह द्वारा "दशक के श्रेष्ठ हिन्दी ब्लॉगर दम्पति" सम्मान, अंतर्राष्ट्रीय ब्लॉगर सम्मेलन, भूटान में "परिकल्पना सार्क शिखर सम्मान", विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ, भागलपुर, बिहार द्वारा डॉक्टरेट (विद्यावाचस्पति) की मानद उपाधि, भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा "डॉ. अम्बेडकर फेलोशिप राष्ट्रीय सम्मान" साहित्य मंडल, श्रीनाथद्वारा, राजस्थान द्वारा "हिंदी भाषा भूषण", वैदिक क्रांति परिषद, देहरादून द्वारा "श्रीमती सरस्वती सिंहजी सम्मान", भारतीय बाल कल्याण संस्थान द्वारा "प्यारे मोहन स्मृति सम्मान", आदि विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित।

संपर्क सूत्र : पोस्टमास्टर जनरल,
उत्तरी गुजरात परिक्षेत्र, अहमदाबाद -380004
kkyadav.t@gmail.com

साहित्य और संवेदना का अटूट रिश्ता है। यह रिश्ता जब वास्तविक जीवन में भी फलीभूत होता है तो विलक्षण रचनाधर्मिता का जन्म होता है। साहित्य सिर्फ रचने का नाम नहीं बल्कि जीने का भी नाम है। तभी तो कहा गया है कि सार्थक साहित्य वह है जो जीवन के साथ चले। ऐसे ही मिजाज के साहित्यकार थे- बाबा नागार्जुन। अपने फक्कड़ मिजाज, यायावरी, ठेठ लहजे और बेलौस कविताई के लिए प्रसिद्ध नागार्जुन हमेशा लोक-चेतना व संघर्ष के साथ चले और सदैव शोषित मानस का पक्ष लिया। जन संघर्ष में अडिग आस्था, जनता से गहरा लगाव और एक न्यायपूर्ण समाज का सपना, ये तीन गुण नागार्जुन के व्यक्तित्व में ही नहीं, उनके साहित्य में भी घुले-मिले हैं। समकालीन विसंगतियों, विद्रूपताओं और जटिलताओं को चुनौती देते उनके तेवर बार-बार परिलक्षित हुए और इसे उन्होंने अपनी एक कविता "प्रतिबद्ध हूँ" में दो-टूक लहजे में स्पष्ट भी किया-

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ-
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त-
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया-धसान' के खिलाफ
अंध-बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए
अपने आप को भी 'व्यामोह' से बारंबार उबारने की खातिर
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ!

नागार्जुन (30 जून 1911-5 नवम्बर 1998) का असली नाम वैद्यनाथ मिश्र था। 30 जून 1911 को गाँव सतलखा, मधुबनी, बिहार में जन्मे नागार्जुन ने हिन्दी साहित्य में 'नागार्जुन' तथा मैथिली में 'यात्री' उपनाम से रचनाएँ कीं। उनके पिता गोकुल मिश्र जी तरउनी गाँव के एक साधारण किसान थे और खेती-बाड़ी के अलावा पुरोहिती के सिलसिले में आस-पास के गांवों में आया-जाया करते थे। ऐसे में उनके साथ-साथ नागार्जुन भी बचपन से ही "यात्री" हो गए। नागार्जुन की प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत में हुई किन्तु आगे स्वाध्याय पद्धति से ही उनकी शिक्षा बढ़ी। चूँकि वे बचपन से ही यायावर थे, अतः उन्हें ऐसे लोगों की संगति पसंद थी। राहुल सांकृत्यायन की यायावरी जग-जाहिर है, ऐसे में उनके द्वारा किये गए "संयुक्त निकाय" का अनुवाद पढ़कर नागार्जुन का मन हुआ कि यह ग्रंथ मूल पालि में पढ़ा जाए। फिर क्या था, उनका यायावरी मन उद्दिग्ग हो उठा और इसके लिए वे श्रीलंका चले गए जहाँ वे स्वयं पालि पढ़ते थे और मठ के भिक्षुओं को संस्कृत पढ़ाते थे। यहीं वे बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए।

नागार्जुन की यह यायावरी सिर्फ घूमने और ज्ञानार्जन तक ही नहीं रही बल्कि साहित्य के क्षेत्र में भी उनकी यह यायावरी और फक्कड़पन परिलक्षित होता है। उन्होंने 20 वीं सदी के तीसरे दशक में साहित्य में कदम रखा, जब उनकी उम्र करीब 25 साल की थी। तात्कालिक राजनैतिक परिवेश का उन पर गहरा प्रभाव पड़े। वे राजनैतिक परिवर्तन की लालसा रखने वाले कवि थे। यह वह दौर था देश की आजादी के लिए लड़ाई का, आंदोलनों का और साहित्य भी इससे अछूता नहीं था। उस समय हिन्दी साहित्य में छायावाद उस चरमोत्कर्ष पर था, जहाँ से अचानक तेज ढलान शुरू हो जाती है। ऐसे ही माहौल में नागार्जुन ने अपनी अभिव्यक्तियों को शब्द देने आरंभ किये। उन्होंने 1936 में लेखन की शुरुआत की। वर्ष 1939 में प्रकाशित आरंभिक दिनों की उनकी एक कविता 'उनको प्रणाम' गौरतलब है-

जो नहीं हो सके पूर्ण-काम
मैं उनको करता हूँ प्रणाम
जिनकी सेवाएँ अतुलनीय
पर विज्ञापन से रहे दूर
प्रतिकूल परिस्थिति ने जिनके
कर दिए मनोरथ चूर-चूर!
- उनको प्रणाम!

नागार्जुन की आरंभिक कविताओं के तेवर से ही स्पष्ट है कि वे विज्ञापन या चकाचौंध की बजाय जमीनी हकीकत को ज्यादा महत्व देते हैं। वे उनकी बात करते हैं जो वाकई जमीन से जुड़े हुए हैं, संघर्षों से जुड़े हुए हैं, खुरदुरे यथार्थों से रोज टकराते हैं। इस रूप में उनकी कविताओं में कबीर से लेकर धूमिल तक की पूरी हिन्दी काव्य-परंपरा एक साथ जीवंत है। 1940 में लिखी उनकी कविता 'भारतेंदु' उनकी साहित्यिक चेतना को दर्शाती है-

हिंदी की है असली रीढ़ गंवारू बोली,
यह उत्तम भावना तुम्हीं ने हममें घोली,
हे जनकवि सिरमौर!
सहज भाषा लिखवइया,
तुम्हें नहीं पहचान सकेंगे बाबू भईया।

वस्तुतः नागार्जुन का रचना-संसार अपने अन्दर एक विविधता लिए हुए है। सिर्फ विधाओं के स्तर पर ही नहीं, भाषाओं और बोलियों के स्तर पर भी। देसी बोली के ठेठ शब्दों से लेकर संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय पदावली तक उनकी

भाषा के अनेकों स्तर हैं। मैथिली, हिन्दी और संस्कृत के अलावा पालि, प्राकृत, बांग्ला, सिंहली, तिब्बती इत्यादि अनेकानेक भाषाओं का ज्ञान उन्हें और समृद्ध बनाता है। पर इस बात का उन्हें कोई घमंड नहीं था, बल्कि इसका उपयोग कई बार वे सामान्य से लगने वाले स्थानीय दृश्यों या अनुभव-प्रसंगों को उनकी भाषा में उकेरकर सहज महसूस करते थे। चर्चित आलोचक नामवर सिंह की मानें तो, तुलसी के बाद नागार्जुन अकेले ऐसे कवि हैं, जिनकी कविता की पहुँच किसानों की चौपाल से लेकर काव्य रसिकों की गोष्ठी तक है। अपनी इसी विशेषता के कारण वे श्रमशील जनता के पक्ष में खड़े होते थे। उन्हें इस बात का गर्व था कि वे एक कवि थे और कवि का कार्य समाज के सामने सच रखना है।

जनता मुझे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ ?
जनकवि हूँ मैं सत्य कहूँगा, क्यों हकलाऊँ

यही कारण है कि नागार्जुन को भावबोध और कविता के मिज़ाज के स्तर पर सबसे अधिक निराला और कबीर के साथ जोड़कर देखा गया है। उनका 'फक्कड़पन' और 'यायावरी' भारतीय मानस एवं विषय-वस्तु को समग्र और सच्चे रूप में समझने का साधन रहा है। कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि, नागार्जुन का सक्रिय, गतिशील और प्रतिबद्ध सुदीर्घ जीवन उनके काव्य में जीवंत रूप से प्रतिध्वनित-प्रतिबिंबित होता है-

'अपने खेत' में हल चला रहा हूँ
इन दिनों बुआई चल रही है
इर्द-गिर्द की घटनाएँ ही
मेरे लिए बीज जुटाती हैं
हाँ, बीज में धुन लगा हो तो
अंकुर कैसे निकलेंगे!
जाहिर है/बाजारू बीजों की
निर्मम छँटाई करूँगा
खाद और उर्वरक और

सिंचाई के साधनों में भी
पहले से जियादा ही
चौकसी बरतनी है
मकबूल फिदा हुसैन की
चौकाऊ या बाजारू टेकनीक
हमारी खेती को चौपट/कर देगी!
जी, आप/अपने रूमाल में
गाँठ बाँध लो, बिल्कुल!!

यह भी एक अजीब संयोग है कि नागार्जुन की कविताओं को आरंभ में उनके समकालीनों ने महत्व नहीं दिया। वे अपनी पुस्तकें खुद ही झोले में लेकर बांटते और बेचते थे।



यह शायद बचपन की पुरोहिती और यायावरी का ही प्रभाव था कि वे हमेशा ज्ञान बाँचा करते थे। उसके लिए उन्हें कोई मंच नहीं चाहिए था, कोई अवसर विशेष नहीं चाहिए था, किसी प्रकाशक या पत्र-पत्रिका की कृपा दृष्टि नहीं चाहिए थे। 1952 में उनका प्रथम काव्य-संकलन 'युगधारा' प्रकाशित हुआ। इसके बाद सतरंगे पंखों वाली (1959), तालाब की मछलियाँ (1974), खिचड़ी विप्लव देखा हमने, हजार-हजार बाहों वाली, पुरानी जूतियों का कोरस, तुमने कहा था, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, इस गुबार की छाया में, ओम मंत्र, भूल जाओ पुराने सपने, रत्नगर्भ, अपने खेत में (1988) इत्यादि एक दर्जन से ज्यादा कविता-संग्रह प्रकाशित हुए। चना जोर गरम, खून और शोले, प्रेत का बयान इत्यादि काव्य-पुस्तिकाएं भी चर्चा में रहीं। मैथिली में लिखा उनका ऐतिहासिक काव्य-संग्रह "पत्रहीन नग्न गाछ" काफी प्रसिद्ध हुआ और इस पर उन्हें 1965 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। कालांतर में साहित्य अकादमी ने 1994 में साहित्य अकादमी फेलो के रूप में उन्हें नामांकित कर सम्मानित किया।

नागार्जुन का कविता-कर्म लोक सरोकारों से जुड़ा हुआ था। तभी तो उन्हें 'जन आंदोलनों और सामाजिक सरोकारों का कवि' या 'क्रान्तिकारी कवि' कहा गया। उनके समय में छायावाद, प्रगतिवाद, हालावाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता, जनवादी कविता और नवगीत आदि जैसे कई काव्य-आंदोलन चले पर उनकी कविता इन सब वादों से परे अपना स्वतन्त्र वजूद बनाती और अपने काव्य-सरोकार 'जन' से ग्रहण करती। 'अकाल और उसके बाद' कविता की पंक्तियाँ मन को झकझोरकर रख देती हैं-

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त.
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद.

इसे विडम्बना ही कहा जायेगा कि लम्बे समय तक लोग उन्हें कवि नहीं मानते। 1978 में जब प्रभाकर माचवे के संपादन में 'आज के लोकप्रिय कवि' शृंखला में पहली बार नागार्जुन का नाम शामिल हुआ, उस समय तक उनका कोई काव्य-संग्रह किसी प्रकाशक ने नहीं प्रकाशित किया था। जबकि इससे पूर्व उनके उपन्यास प्रकाशकों ने प्रकाशित किया था। वस्तुतः नागार्जुन ने कभी भी किसी बैँधी-बैँधायी लीक का निर्वाह नहीं किया, बल्कि अपने काव्य के लिए स्वयं की लीक का निर्माण किया। दरभंगा के महाराज के बुलावे पर वे कविता नहीं पढ़ने गए। उन्होंने

सत्ता-प्रतिष्ठानों की परवाह कभी नहीं की। ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ के आगमन पर उनका कवि-मन 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' कविता के माध्यम से व्यंग्य रूप में अपना विद्रोह प्रकट करता है-

यह तो नई-नई दिल्ली है, दिल में इसे उतार लो.
एक बात कह दूँ मलका, थोड़ी-सी लाज उधार लो.
बापू को मत छोड़ो, अपने पुरखों से उपहार लो.
जय ब्रिटेन की जय हो इस कलिकाल की.
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी.
रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की.
यही हुई है राय जवाहरलाल की.
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!

राजनैतिक आंदोलनों को नागार्जुन ने उनके अंतर्द्वंद्वों के साथ करीब से देखा। सर्वोदय के नटवरलालों पर वे अपनी कविता 'तीनों बन्दर बापू के' में करार व्यंग्य करते हैं। बिनोबा भावे के भू-दान आन्दोलन की निरर्थकता पर भी उन्होंने तीखी टिप्पणी की। आखिर वे उसी बिहार की पैदाइश हैं, जहाँ आज भी जमीन की लड़ाई को लेकर न जाने कितनी सेनाएं बनी हुई हैं। आपात काल के दौरान उन्होंने उन्होंने इंदिरा गाँधी को लेकर न सिर्फ लिखा-कहा, बल्कि जेल भी गए-

क्या हुआ आपको ?

क्या हुआ आपको ?

सत्ता की मस्ती में भूल गई बाप को.

इंदु जी, इंदु जी, क्या हुआ आपको ?

तो जेल से छूटने के बाद जयप्रकाश नारायण के खिलाफ भी बयान दिया। जिस चीज का अहसास जे.पी. को जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद हुआ, उसे नागार्जुन ने उसी दौर में समझ लिया था। तभी तो उन्होंने जनता पार्टी के शासन-काल के दौर को 'खिचड़ी-विप्लव' का नाम दिया। इसके अलावा भी 'अब तो बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन', 'तीन दिन, तीन रात', 'जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की' जैसी उनकी कविताएँ व्यंग्यात्मक रूप में सत्ता-प्रतिष्ठान को ललकारती नजर आती हैं। कई बार आलोचक उन्हें 'राजनैतिक प्रोपोगंडा वाला कवि' कहते थे। नागार्जुन के इस व्यवहार पर समालोचक प्रो. मैनेजर पांडेय की टिप्पणी गौर करने लायक है- "एक जनकवि के रूप में नागार्जुन खुद को जनता के प्रति जवाबदेह समझते हैं, किसी राजनीतिक दल के प्रति नहीं। इसलिए जब वे साफ ढंग से सच कहते हैं तो कई बार वामपंथी दलों के राजनीतिक और साहित्यिक नेताओं को भी नाराज करते हैं। जो लोग राजनीति और साहित्य में सुविधा के सहारे जीते हैं वे दुविधा की भाषा बोलते हैं। नागार्जुन की दृष्टि में कोई दुविधा नहीं है.....यही कारण है कि खतरनाक सच साफ बोलने का वे खतरा उठाते हैं."

अखबारों की सुर्खियों को कविता के माध्यम से कहने का जो अप्रतिम गुण नागार्जुन में था, वह विरले ही देखने को मिलता है। उनकी कविताएँ घुमा-फिराकर नहीं बल्कि सीधे बातों पर आ जाती हैं। प्रसिद्ध आलोचक केदारनाथ सिंह की मानें तो -"तात्कालिकता पर कविता लिखना जोखिम मोल लेने से कम नहीं है, लेकिन नागार्जुन ने इसे कविता की समसामयिक ज़रूरत बताया। इसी कारण स्थूल घटना को गहरी संवेदना में रूपांतरित करने वाले कवि होने का गौरव उन्हें प्राप्त है।" जब देश आजादी की रजत जयंती मनाने की घोषणा कर रहा था, तब वे देश के कर्णधारों पर सवाल उठा रहे थे-

फटे वस्त्र हैं घर से बाहर निकलेगी कैसे लजबन्ती.
शर्म न आती मना रहे वे महँगाई की रजत जयंती.

नागार्जुन साहित्य में घुसती राजनीति को भी करीब से महसूस कर रहे थे। जब बिहार के एक प्रतिष्ठित साहित्यकार को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला तो उन्होंने बेझिझक लिखा-

ओ बिहार के गोर्की,
ओ कवि कमल दिवाकर,
तुमको हम देखते रहेंगे मुँह बा-बा कर.
कोशी उमड़े अर्थनीति पर डालर छाए.
मौज मनाओ, राजनीति चूल्हे पर जाए.
प्रेस, रेडियो, मंच सभी पर हावी होना.
मिट जायेगा प्यारे जीवन भर का रोना.

नागार्जुन के लिए कवि-कर्म कोई आभिजात्य शौक नहीं, बल्कि खुरदुरेपन का अहसास है, जिससे आम-जन रोज जूझता है। वह कविता को रोटी की तरह जीवन के लिए अनिवार्य मानते हैं। जीवन को उन्होंने जिस रूप में पाया, उसी रूप में स्वीकार किया। कभी दूसरों का देखकर लालच नहीं किया। जहाँ धर्म और दर्शन ईश्वर की अपनी व्याख्याएं करते हैं, वहीं नागार्जुन इन सबको एक सिरे से नकारते हुए 'अन्न-पच्चीसी' कविता में लिखते हैं-

अन्ना ब्रह्म ही ब्रह्म है, बाकी ब्रह्म पिशाच.
औघड़ मैथिल नाग जी अर्जुन यही उवाच.

कभी कार्ल मार्क्स ने धर्म को अफीम कहा था। धर्म के नाम पर बढ़ते पाखंड, ईश्वर के नाम फैलाया जाता आतंक जनमानस को धर्मभीरु और अकर्मण्य बना देता है। ऐसे में कविवर नागार्जुन ईश्वरीय सत्ता की चुनौती को भी स्वीकार करते हैं और 'कल्पना के पुत्र हे भगवान' में आह्वान करते हैं, जो उनके वश का ही लिखना था-

चाहिए मुझको नहीं वरदान.
दे सको तो दो मुझे अभिशाप.

चाहिए मुझको नहीं यह शांति.
चाहिए संदेह, उलझन, भ्रांति.
रहूँ मैं दिन-रात ही बेचैन.
आग बरसाते रहें ये नैन.
करूँ मैं उदंडता के काम.
तूँ न भ्रम से भी तुम्हारा नाम.
करूँ जो कुछ, सो निडर, निश्शंक.
हो नहीं यमदूत का आतंक.

नागार्जुन सर्वहारा वर्ग की कठिनाइयों, उनकी पीड़ा, समाज में व्याप्त विसंगतियों पर खूब कलम चलाते थे। समाज को प्रगतिशील और जागरूक बनाने में रूढ़ियों को वे बाधा के रूप में देखते थे और बेलौस लिखते थे-

हमें नहीं चाहिए तुम्हारी ऐसी करुणा.
हमें नहीं चाहिए वे माता श्यामा-अरुणा.
कितना खून पीया है जाती नहीं खुमारी.
सुख और लम्बी है मैया जीभ तुम्हारी.

झाड़-फूंक कर सामान्य-जन को बहलाने-फुसलाने और अपना उल्लू सीधा करने वालों पर भी नागार्जुन बरसते हैं। ऐसे पाखंडियों का मजाक उड़ाती उनकी कविता 'मंत्र कविता' दिलचस्प है-

ओं भैरो, भैरो, भैरो, ओं बजरंगबली
ओं बंदूक का टोटा, पिस्तौल की नली
ओं डालर, ओं रूबल, ओं पाउंड
ओं साउंड, ओं साउंड, ओं साउंडओम् ओम् ओम्
ओम् धरती, धरती, धरती, व्योम् व्योम व्योम्
ओं अष्टधातुओं की ईंटों के भट्टे
ओं महामहिम, महामहो, उल्लू के पट्टे
ओं दुर्गा दुर्गा दुर्गा तारा तारा तारा
ओं इसी पेट के अंदर समा जाए सर्वहारा
हरि: ओं तत्सत् हरि: ओं तत्सत्.

नागार्जुन ने अपनी कविताओं में व्यंग्य की धार से लोक चेतना और सामाजिक सरोकारों के करीब अपने को पाया। सामान्य जनमानस भी उनकी इन चुटीली पर कड़वी बातों को गहराई से महसूस करता था, क्योंकि बाबा ने अपनी कविताओं का भाव-धरातल सदा सहज और प्रत्यक्ष यथार्थ रखा, वह यथार्थ जिससे समाज का आम आदमी रोज जूझता है। उनकी कविताएँ लोगों से संवाद करती नजर आती थीं। अपनी कविताओं के इस पौनपन, व्यंग्य की धार और सहजता के कारण ही नागार्जुन मंचों पर भी छाए रहे। उन्हीं की जुबानी सुनें- "कवि-सम्मेलनों में बहुत जमते हैं हम। समझ गए ना? बहुत विकट काम है कवि-सम्मेलन में कविता सुनाना। बड़े-बड़ों को, तुम्हारा, क्या कहते हैं, हूट कर दिया जाता है। हम कभी हूट नहीं

हुए. हर तरह का माल रहता है, हमारे पास. यह नहीं जमेगा, वह जमेगा. काका-मामा सबकी छुट्टी कर देते हैं हम..... समझ गए ना?" नामवर सिंह ने नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताओं के संकलन की भूमिका में इस ओर इंगित करते हुए लिखा है कि- "व्यंग्य की इस विदग्धता ने ही नागार्जुन की अनेक तात्कालिक कविताओं को कालजयी बना दिया है, जिसके कारण वे कभी बासी नहीं हुईं और अब भी तात्कालिक बनी हुई हैं.....इसलिए यह निर्विवाद है कि कबीर के बाद हिन्दी कविता में नागार्जुन से बड़ा व्यंग्यकार अभी तक कोई नहीं हुआ. नागार्जुन के काव्य में व्यक्तियों के इतने व्यंग्यचित्र हैं कि उनका एक विशाल एलबम तैयार किया जा सकता है. "

कई बार नागार्जुन की निगाहें ऐसे पहलुओं पर भी जाती थीं, जहाँ अन्य की नहीं पहुँचती. वे कविताएँ गढ़ते नहीं थे, बल्कि परिवेश देखकर उनकी जुबान से स्वतः कविता निकलती थी. उनकी कवि-दृष्टि के सम्बन्ध में डॉ. रामविलास शर्मा ने सही ही कहा है-" नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौंदर्य के संतुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है, उतनी सफलता से बहुत कम कवि-हिन्दी से भिन्न भाषाओं में भी-हल कर पाए हैं." वास्तव में नागार्जुन की दृष्टि रोजमर्रा के ही उन दृश्यों-प्रसंगों के जरिए वहाँ तक स्वाभाविक रूप से पहुँच जाती थी, जहाँ दूसरे कवियों की कल्पना-दृष्टि पहुँचने से पहले ही उलझ कर रह जाए. उनकी एक कविता 'पैने दाँतोंवाली' में व्यक्त भाव और चित्रण देखें-

धूप में पसरकर लेटी है
मोटी-तगड़ी, अघेड़, मादा सुअर...
जमना-किनारे
मखमली दूबों पर
पूस की गुनगुनी धूप में
पसरकर लेटी है
वह भी तो मादरे हिंद की बेटी है
भरे-पूरे बारह थनोंवाली!

नागार्जुन का रचना-संसार बड़ा विस्तृत है. एक दर्जन कविता-संग्रह, दो खण्ड काव्य, दो मैथिली;(हिन्दी में भी अनूदित) कविता-संग्रह के साथ-साथ छः से अधिक उपन्यास, एक मैथिली उपन्यास, एक संस्कृत काव्य "धर्मलोक शतकम्" तथा संस्कृत से कुछ अनूदित कृतियों के रचयिता रूप में साहित्य संसार में उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी है. उनकी कृतियों में- रतिनाथ की चाची, बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, नयी पौध, वरुण के बेटे, दुखमोचन, उग्रतारा, कुंभीपाक, पारो, आसमान में चाँद तारे (सभी उपन्यास), अन्न हीनम क्रियानाम (निबंध संग्रह), अभिनंदन (व्यंग्य), कथा मंजरी भाग-1, कथा मंजरी भाग-2, मर्यादा पुरुषोत्तम, विद्यापति की कहानियाँ

(सभी बाल साहित्य) का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है. इसके अलावा मैथिली कृतियों में - पत्रहीन नग्न गाछ (कविता-संग्रह), हीरक जयंती (उपन्यास) तो बांग्ला कृति में- मैं मिलिट्री का पुराना घोड़ा (हिन्दी अनुवाद) चर्चित हैं.

आज आजादी के एक लम्बे अंतराल बाद भी जब जनता अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है, कुछ लोग उसके हकों पर कुंडली मारकर बैठे हुए हैं, भ्रष्टाचार की विषबेल तेजी से फैल रही है, मंहगाई सुरसा की भांति हर साल अपना मुँह फैलाये ही जा रही है, आम जन की आवाज़ को लाठियों के दम पर सत्ता-तंत्र द्वारा दबा दिया जाता है, वहाँ नागार्जुन की प्रासंगिकता स्वतः रेखांकित हो जाती है. वह सिर्फ एक कवि नहीं थे, बल्कि जन-सरोकारों और जन-आंदोलनों को धार देने वाले एक फक्कड़ सेनानी भी थे. शायद उनके जिन्दा रहते उनके शब्दों को उतनी तवज्जो नहीं दी गई, पर आज उनके आलोचक भी उनके योगदान को स्वीकार करते हैं और उनके कृतित्व के पुनर्मूल्यांकन की बात करते हैं. इसके मूल में यही भाव छुपा है कि नागार्जुन ने रचनाधर्मिता के स्तर पर तमाम प्रयोग किए, पर उनके मूल में जन-सरोकार ही रहे. एक बार इब्बार रबी ने तुलनात्मक रूप में लिखा कि- "वह समाज जो आदमी का शोषण कर रहा है, उसकी मानसिकता को उजागर करते हैं अप्रत्यक्ष रूप से श्रीकांत वर्मा; उसके स्रोतों की पोल खोलते हैं रघुवीर सहाय; और उससे लड़ना सिखाते हैं नागार्जुन।" वास्तव में देखा जाय तो निराला के बाद नागार्जुन अकेले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने इतने छंद, इतने ढंग, इतनी शैलियाँ और इतने काव्य रूपों का इस्तेमाल किया है। पारंपरिक काव्य रूपों को नए कथ्य के साथ इस्तेमाल करने और नए काव्य कौशलों को संभव करनेवाले वे अद्वितीय कवि हैं। नागार्जुन की कविताओं में जीवन के विभिन्न रंग हैं. उनमें राजनीति से लेकर समाज, प्रकृति, संस्कृति, व्यंग्य, दलित, किसान, आदिवासी, स्त्री सभी शामिल हैं. चर्चित आलोचक नामवर सिंह से शब्द उधार लेकर कहें तो -"कविता में विषय वस्तु से लेकर रचना विधान तक जितने प्रयोग नागार्जुन ने किए, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं. जिन विषयों को दूसरे कवियों ने अछूत समझा, उन पर भी नागार्जुन ने खूब कलम चलाई. उन्होंने अपनी कविता में समाज के आखिरी आदमी को हीरो बनाया."

माळा तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।

मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै, यह तौ सुमिरन नाहिं॥

कबीर के दोहे





सलिल सरोज

समिति अधिकारी

संसद की सामाजिक न्याय और अधिकारिता संबंधी स्थाई समिति
लोकसभा सचिवालय, भारत का संसद, नई दिल्ली

आलेख

वर्तमान काल में प्रेमचंद और उनकी कृत्यों की प्रासंगिकता

धनपत राय श्रीवास्तव का जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। उन्होंने एक मंदरसे में शिक्षा प्राप्त की, जहाँ उन्होंने उर्दू और फ़ारसी सीखी, और बाद में एक मिशनरी स्कूल में अंग्रेजी सीखी। उन्होंने अपनी पहली कहानी असरार-ए-माविद) भगवान के निवास का रहस्य (नवाब राय के उपनाम से लिखी। कहानी में पुजारियों द्वारा महिलाओं के यौन शोषण के बारे में बात की गई है। प्रेमचंद के नाम से उन्होंने 1920-1936 के बीच अपने अधिकांश प्रसिद्ध कार्यों की रचना की, जिसमें उनके उपन्यास गोदान, प्रेमा, रंगभूमि और प्रतिज्ञा शामिल हैं। प्रेमचंद उर्दू पत्रिका "ज़माना" के लिए लिखा करते थे। प्रेमचंद महात्मा गांधी के प्रबल अनुयायी थे, लेकिन बाद में उनके विचारों से उनका मोहभंग हो गया। 1936 में, उन्हें प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अध्यक्ष चुना गया। उनका काम सिर्फ छोटी कहानियों और उपन्यासों तक सीमित नहीं था - उन्होंने एक हिंदी फिल्म, मजदूर (1934) की पटकथा भी लिखी।

प्रेमचंद का आम आदमी से गहरा लगाव था और उनकी स्वाभाविक सहानुभूति समाज के शोषित और वंचित वर्गों के प्रति थी। जाने-माने आलोचक हरीश त्रिवेदी ने टिप्पणी की है कि उनसे पहले उर्दू या हिंदी और संभवतः अन्य भारतीय भाषाओं में किसी भी लेखक ने दलितों, अछूतों और हाशिए के वर्गों के जीवन को इतनी गहराई और सहानुभूति के साथ चित्रित नहीं किया था। एक अन्य बोधगम्य पर्यवेक्षक अमृत राय हमें याद दिलाते हैं कि प्रेमचंद ने अपने पूरे जीवन में ग्रामीण जीवन की गंभीर वास्तविकताओं के बारे में, आर्थिक स्तर के निचले स्तर पर जीवन के बारे में अपनी असंवेदनशील जागरूकता को नहीं जाने दिया। प्रेमचंद ने पुरोहित वर्ग से झगड़ा किया और जातिगत अन्याय के कटु आलोचक बने रहे। उदाहरण के लिए, बाबाजी के पर्व में, वह एक ब्राह्मण के लालच को दर्शाता है, जिसे एक गरीब परिवार को लूटने में कोई कमी नहीं है, और अंतिम संस्कार में उन्होंने दिखाया कि कैसे शिकारी और परजीवी ब्राह्मणों ने एक अन्य ब्राह्मण महिला को बेसहारा और उसकी बेटी को आत्महत्या के लिए प्रेरित किया।

ठाकुर का कुआं, मोक्ष, कफन, मंदिर, घास बेचने वाली महिला और गेहूं के एक चौथाई सेर जैसी कहानियां उच्च जाति के हिंदुओं ने पीढ़ियों से दलितों के साथ जिस तरह से व्यवहार किया है, उसे विनाशकारी अभियोग बनाती हैं। वसुधा डालमिया, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले में हिंदी और आधुनिक दक्षिण एशियाई अध्ययन की प्रोफेसर एमेरिता प्रेमचंद को अपने समय से बहुत आगे का लेखक, चिंतक और दार्शनिक मानती हैं। प्रेमचंद की कहानियों की एक बड़ी संख्या महिलाओं की दुर्दशा से संबंधित है। वह एक पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की पीड़ा के प्रति बहुत संवेदनशील थे, जहां उनकी अपनी कोई मर्जी और जीविका नहीं थी और वे पुरुषों की सनक और कल्पनाओं के अनुसार अपना जीवन जीते थे, जिन पर वे निर्भर थे। तुलिया, सती, आत्महत्या, प्रेम का बंधन, सच्चे दोस्त और पागल प्रेमी जैसी बड़ी संख्या में कहानियों में, उन्होंने एक दमनकारी, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में महिलाओं की दुर्दशा पर प्रकाश डाला।

प्रेमचंद न केवल मानवीय स्थिति के इतिहासकार थे, बल्कि कट्टर राष्ट्रवादी थे और जैसा कि मार्क्सवादी आलोचक नामवर सिंह कहते हैं: "यदि कोई किसी एक भारतीय लेखक में भारतीय जीवन की नब्ज, उसके संघर्ष, उसके दुख और उसकी पीड़ा को खोजना चाहता है, 1905 में बंगाल के विभाजन से लेकर 1936 तक तीन दशकों की अवधि में, जब उनका निधन हो गया, तब, इस तथ्य के बावजूद कि हमारे पास रवींद्रनाथ टैगोर हैं, हमारे पास शरत चंद्र हैं, सुब्रह्मण्य भारती हैं, हमारे पास वीएस खंडेलकर हैं, हमारे पास केएम मुंशी हैं, और हमारे पास मोहम्मद इकबाल भी हैं, मैं प्रेमचंद का नाम लेना चाहूंगा, क्योंकि वह एक ऐसे लेखक हैं जो हमारे पास उन कार्यों में स्वतंत्रता के लिए हमारे संघर्ष की अमर गाथा हैं। अपनी संपूर्णता में वर्णित है।"

ठहरे हुए जल में सत्य स्नान नहीं करता। स्वयं से विकसित होने की क्षमता एक विकसित बुद्धि की पहचान है। प्रेमचंद के समान एक नित्य बढ़ता हुआ ज्ञान हर नए कार्य के साथ अपने आप बढ़ता जाता था, और सदा विकसित होता रहता था। प्रेमचंद ने गरीबी के बारे में



इसलिए लिखा क्योंकि वे घोर गरीबी में जीते थे। मैट्रिक के बाद औपचारिक शिक्षा छोड़ने के लिए मजबूर होने के कारण उन्हें छात्रवृत्ति नहीं मिली, उन्होंने बहुत कम उम्र में परिवार का समर्थन करने के लिए काम करना शुरू कर दिया, पहले चुनारगढ़ के एक स्कूल में और बाद में बहराइच में पढ़ाया। जब हम 7 जून 1913 को लिखे उनके पत्र को पढ़ते हैं, तो हमें पता चलता है कि जब आधी सदी के बाद, एक प्रसिद्ध हिंदी व्यंग्य लेखक ने प्रेमचंद के फटे जूते (प्रेमचंद के पुराने जूते) लिखे, तो वे सच्चाई से दूर नहीं थे।

प्रेमचंद की कहानियाँ एक लेखक की संवेदनाओं और उसके आसपास की दुनिया की कठोर वास्तविकताओं के बीच झूलती हैं। उन्होंने देखा कि कैसे साधारण लोग धर्म के कारण बहक गए और कट्टर बन गए, अपने साथी लोगों पर हमला कर उन्हें मार डाला। यह उसकी जिहाद जैसी कम पढ़ी जाने वाली कहानियों में परिलक्षित होता है जिसमें वह उत्तर पूर्व के एक गाँव की कहानी सुनाता है, जहाँ एक मुल्ला के आगमन से ऐतिहासिक मित्रों से कट्टर शत्रु पैदा होते हैं, और पठान हिंदुओं पर हमला करते हैं, जो कभी जाति और वर्ग की संकीर्ण रेखाओं में विभाजित होते हैं। प्रेमचंद ने हिंदू धर्म की बुराइयों पर बहुत कुछ लिखा है और सुधारों के एक बड़े समर्थक थे, लेकिन इस कहानी में जो सामने आता है वह यह है कि पुरुषों को सबसे बुरे अत्याचारों का भी सामना करने के लिए अपने विश्वास पर कायम रहना चाहिए। कहानी में दो दोस्त हैं और इसके अंत में दोनों आदमी मर जाते हैं। लेकिन जिसने अपने विश्वास से समझौता किया, वह एक हारा हुआ मरणासन्न व्यक्ति है जबकि जो विश्वास के प्रति सच्चा रहता है वह विजयी होता है। प्रेमचंद, अपनी अधिकांश कहानियों में उत्तर नहीं देते हैं। उनकी कहानियाँ हमें उस समय और अधिक भ्रमित करती हैं जब हम उन्हें छोड़ देते हैं। लेकिन यही उनके लेखन की ताकत है। वह जवाब की तलाश में एक संवेदनशील व्यक्ति हैं, मंच पर बैठे हुए विचारक नहीं।

वह हम में से एक की तरह है, जो मानव निर्दोषता की एक यूटोपियन दुनिया का जवाब और रास्ता खोजने की कोशिश कर रहा है, जो अभी तक धर्म की साजिशों से भ्रष्ट नहीं है। उनकी कहानी मंदिर और मस्जिद में, एक मुस्लिम जमींदार और उसका हिंदू अंगरक्षक है, जो अपने मालिक के दामाद की हत्या कर देता है, जिसने एक हिंदू मंदिर पर मुस्लिम हमले का नेतृत्व किया था। जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है, अंगरक्षक, जिसे उसके मालिक

ने बचाया था, खुद को फिर से जागीरदार के सामने पाता है, जब एक हिंदू जुलूस पर मस्जिद से पथराव किया जाता है और वह अपराधियों का पीछा करते हुए मस्जिद में प्रवेश करता है। जागीरदार इस्लाम को बाकी सब चीजों से ऊपर रखता है और मस्जिद पर हमला करने के लिए भजन सिंह को मार देता है। भजन सिंह उसे वफादारी और कृतज्ञता के नाम पर अनुमति देता है। ये नाजुक ढंग से कही गई कहानियाँ बताती हैं कि जब कट्टर धार्मिकता समाज को जकड़ लेती है तो मानवीय भावनाएं कैसे प्रासंगिकता खो देती हैं। मुझे आश्चर्य है कि अगर आज की नकली धार्मिकता

की दुनिया में वह कट्टर या इस्लामोफोब कहे बिना ऐसी कहानियाँ लिख सकता है। राजनीति पर भी, जब हम उनकी कहानी आदर्श विरोध पढ़ते हैं, तो हम तुरंत बैरिस्टर और कांग्रेस नेता की कहानी में परिलक्षित होते हैं। कहानी एक कांग्रेसी, एक अमीर बैरिस्टर की है, जिसे वायसराय की कार्यकारी परिषद का सदस्य नियुक्त किया गया था, लेकिन वह बहुत जल्दी 'भूरा साहब' बन जाता है।

उनके जीवन के अंतिम 20 वर्षों में लिखे गए उनके कुछ बेहतरीन लेखन, उनके विषयों की पसंद में महात्मा गांधी और रूसी क्रांति के

प्रभाव को दर्शाते हैं: विधवा पुनर्विवाह की आवश्यकता, दहेज और अस्पृश्यता की प्रचलित व्यवस्था, भूमिहीनों की समस्याएं मजदूर, भूमि सुधार की तत्काल आवश्यकता, कम वेतन वाले और अधिक काम करने वाले वेतनभोगी लोग जो रिश्ततखोरी और भ्रष्टाचार का सहारा लेते हैं, और सामाजिक और वर्गीय असमानताएँ जो अच्छे लोगों को बुरे काम करने के लिए प्रेरित करती हैं। शारदा विधेयक के लिए उनका समर्थन, जिसका उद्देश्य लड़कियों के लिए शादी की उम्र बढ़ाना और विधवाओं को उनके दिवंगत पति की संपत्ति का हिस्सा देने का अधिकार था, निर्मला और नरक का मार्ग जैसी कहानियों में परिलक्षित होता है।

सामाजिक रूप से जुड़े, उद्देश्यपूर्ण साहित्य के प्रति प्रेमचंद की आत्मीयता एक नए प्रकार के लेखन के उनके समर्थन से स्पष्ट होती है जो 1930 के दशक में आकार लेने लगी थी। जब लंदन में युवा तुर्कों के एक समूह ने एक घोषणापत्र तैयार किया, जो जल्द ही प्रगतिशील लेखक आंदोलन बन जाएगा, तो उन्होंने अक्टूबर 1935 में अपनी प्रभावशाली हिंदी पत्रिका हंस में इसे (यद्यपि थोड़े पानी वाले संस्करण में) प्रकाशित किया। और जब प्रगतिशील 9 अप्रैल, 1936 को लखनऊ के रिफा-ए आम हॉल में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ (पीडब्ल्यूए) की अपनी तरह की एक महत्वाकांक्षी पहली

बैठक (पीडब्ल्यूए) आयोजित करने का निर्णय लिया, प्रेमचंद ने अपने आदेश के साथ इस अवसर पर पहुंचे- एक लेखक के रूप में। उन्होंने न केवल इस नवोदित संघ को अपना पूरा समर्थन दिया, बल्कि उनका अध्यक्षीय भाषण, बाद के वर्षों में, इस देश के इतिहास में किसी अन्य के विपरीत एक साहित्यिक आंदोलन के लिए एक प्रकार का घोषणापत्र बन गया, एक ऐसा आंदोलन जो आकार देगा भारतीय बुद्धिजीवियों की एक पूरी पीढ़ी की प्रतिक्रियाएँ। भाषा को साध्य नहीं, साधन बताते हुए प्रेमचंद ने यह स्वीकार किया कि लेखक का जन्म होता है, बनता नहीं, प्रेमचंद ने जोर देकर कहा कि एक लेखक के प्राकृतिक उपहारों को उसके आसपास की दुनिया के बारे में शिक्षा और जिज्ञासा के साथ बढ़ाया जा सकता है। "साहित्य," उन्होंने कहा, "अब व्यक्तिवाद या अहंकार तक सीमित नहीं है, बल्कि मनोवैज्ञानिक और सामाजिक की ओर अधिक से अधिक मुड़ता है। अब साहित्य व्यक्ति को समाज से अलग नहीं देखता; इसके विपरीत यह व्यक्ति को समाज के अविभाज्य अंग के रूप में देखता है।" "एक तेज दिमाग और एक तेज कलम" को पर्याप्त नहीं मानते हुए, एक लेखक को नवीनतम वैज्ञानिक, सामाजिक, ऐतिहासिक या मनोवैज्ञानिक प्रश्नों से भी परिचित होना चाहिए - जैसा कि अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक सम्मेलनों में होता था। उन्होंने लेखकों से व्यक्तिगत और व्यक्तिगत चिंताओं को त्यागने का आग्रह किया और इसके बजाय, सार्वजनिक और राजनीतिक भूमिकाएं लेते हुए सामूहिक आवाज में बात की। साहित्य, जो अब तक मनोरंजन या सर्वोत्तम रूप से शिक्षित करने के लिए संतुष्ट था, को अब समय की आवश्यकताओं को देखते हुए मानव ज्ञान और स्वतंत्रता को आगे बढ़ाना चाहिए।

इस देश के अब तक के सबसे बेहतरीन निर्देशकों और गीतकारों में शुमार, गुलज़ार का दावा है कि प्रेमचंद आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने कि स्वतंत्रता पूर्व युग के दौरान थे। उनका साहित्य, उनके द्वारा लिखे गए चरित्र, जिन समस्याओं के बारे में उन्होंने बात की, हम अभी भी उनसे उबरने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। गरीबी हो या जातिगत भेदभाव, ये चीजें अभी भी हमारे समाज में हैं और स्थिति और भी खराब हो गई है। 'होरी' और 'धनिया' आज भी हमारे गांव में रह रहे हैं। गुलज़ार को लगता है कि प्रेमचंद की सबसे अच्छी बात यह थी कि ब्रिटिश राज के दौरान देश के सामने आने वाली समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करने की उनकी क्षमता थी, यहां तक कि सीधे शासकों की ओर इशारा किए बिना और उन्होंने इसे बनाए रखने की कोशिश की।

प्रेमचंद ने सामाजिक सौहार्द पर लिखे अपनी एक कहानी में एक मुस्लिम व्यक्ति (इब्राहिम) को मुख्य प्रदर्शनकारी के रूप में चुना। वर्णन दो मायने में दिल को छू लेने वाला है। एक, इब्राहिम सभी धर्मों और जातियों के लोगों के साथ आंदोलन के स्थानीय नेता हैं। वह प्रगतिशील और दूरदर्शी भी हैं। उनका सभी के द्वारा सम्मान किया जाता है। दो, वह एक गांधीवादी है - एक कट्टर अहिंसक चरित्र, जिसे बहुसंख्यक उच्च जाति के महत्वाकांक्षी पुलिस अधिकारी के हाथों घातक लाठी

से मारा गया था। अपनी मृत्यु तक, इब्राहिम ने अधिकारियों पर शारीरिक रूप से प्रहार नहीं किया, हालांकि आंदोलनकारियों के पास ऐसा करने के लिए पर्याप्त उत्तेजना थी। किसी भी अनुयायी ने इब्राहिम को ललकारने की हिम्मत नहीं की। यही प्रेमचंद की खूबसूरती है जिसमें उन्होंने अहिंसा, सहनशीलता और राष्ट्रीय एकता के लिए एक जोरदार और स्पष्ट संदेश देने वाली कहानी को इतनी बारीकी से बुना था। उन्होंने सांप्रदायिक सौहार्द बनाने के लिए आवश्यक सिद्धांतों से समझौता किए बिना अपने जीवन का बलिदान दिया। वर्तमान समय में, जब सांप्रदायिकता अपना कुरूप सिर उठा रही है, और पूरे समाज को संकीर्ण ताकतों से खतरा है, प्रेमचंद एक प्रगतिशील व्यक्ति के रूप में स्पष्ट रूप से प्रासंगिक हैं, उनके लेखन से हमें सामाजिक ताने-बाने को बनाए रखते हुए सांप्रदायिक सद्भाव और शांति से जीने का स्थिर रूप से अक्षुण्ण रास्ता दिखाया गया है। प्रेमचंद के उपन्यासों को पढ़ने और सौहार्द और सौहार्द की भावना को आत्मसात करने का यह सबसे माकूल समय है क्योंकि संचार माध्यम की उत्कृष्टता ने सामाजिक बुराइयों की जड़ें खोल कर सब के सामने रख दी हैं और वो कड़वी सच्चाइयाँ जो प्रेमचंद की कहानियों में बयान होती थी आज भी किसी न किसी मोड़ पर हर भारतीय नागरिक का इंतज़ार करती हुई प्रतीत ही नहीं होती बल्कि आती जाती हुई हवा की तरह हर एक को स्पर्श कर रही है और बदलाव की माँग कर रही है।

प्रवीण पारीक 'अंशु'

सिरसा (हरियाणा)

दोहे

इच्छाओं में भागता, यह मन बारंबार।
मानो, पक्षी नापता, अंबर का विस्तार।
कभी पड़ा सूखा यहाँ, कभी बाढ़ की मार।
रही कृषक के भाग्य में, कष्टों की भरमार।
हाय! यहाँ संसार की, कैसी ये तस्वीर।
झूठों को सौ सुख मिले, सच्चे भोगें पीर।
अपनी पीड़ा को यहाँ, सुनने वाला कौन।
इससे तो अच्छा यही, रह जाएँ हम मौन।
इससे बढ़कर भी भला, होगा क्या संताप।
जब बेटे की लाश को, कंधा देता बाप।
कौन दिशा में जा रहा, जाने आज समाज।
रिश्ते निभते हैं यहाँ, मोबाइल से आज।
जीवन में जितना मिला, नहीं जिन्हें संतोष।
वे ही किस्मत को सदा, देते रहते दोष।
जीवन मुश्किल-सा लगे, कभी लगे आसान।
कभी उदासी घेरती, और कभी मुस्कान।
कौन पराया है यहाँ, और कौन है खास।
धीरे-धीरे उठ रहा, अब सबसे विश्वास।





वीरेंद्र बहादुर सिंह

जेड-436ए, सेक्टर-12,
नोएडा-201301 (उ.प्र.)

लेख

शिशिर की ओढ़नी में पतझड़ का प्रेम

सामान्यतः माघ महीने में पतझड़ आता है। प्रकृति के रंगमंच पर पतझड़ का नाटक सदा ही प्रथम पंक्ति में रहा है। जीवनदर्शन की गीता पतझड़ के पन्नों में संजोई हुई है। मंथन की कोख से जन्मे, सूर्य की गर्मी से पले अन्न के दाने शिशिर की ममता से बड़े होकर किसान की कोठार भर देते हैं। खेतों में उल्लास का वातावरण फसल के साथ-साथ लहराने लगता है। वही शिशिर कृषक की वैभव लक्ष्मी है। शिशिर के कारण ही मनुष्य तन और धन, दोनों से समृद्ध होता है। शिशिर के प्रत्येक कदम प्रकृति के परिवेश में कल्याणकारी होते हैं, पर शिशिर के अंतिम कदमों को या जाते हुए शिशिर को, प्रकृति देख नहीं पाती। वृक्ष पत्ते झाड़ते हुए विलाप करने लगते हैं। हरे पत्ते रंग बदलकर पीलेपन को धारण कर लेते हैं... कुछ ही समय में शिशिर नाम की कन्या का नाम बदल जाता है। जैसे कन्या विवाह कर ससुराल जाती है और उसकी पहचान बदलती जाती है, वैसे ही धीरे-धीरे शिशिर का रूपांतरण पतझड़ में दिखाई देने लगता है। शिशिर के विसर्जन की वेदना का दूसरा नाम ही पतझड़ है। कभी-कभी वसंत के प्रारंभिक दिनों में भी पतझड़ दिखाई दे जाता है। पतझड़, शिशिर की साड़ी के पल्लू से बंधा स्नेह है। प्रकृति का संवेदनशील गीत पतझड़ है या यूँ कहें कि हरे रंग का पीले में बदल जाने का जादू, जिसे आता है, वही पतझड़ है। भले ही वह शिशिर की सीमा में, शिशिर की संतान के रूप में जन्मे, पर उसने अपनी विशिष्ट और अलग पहचान अंकित कर ली है। जन्म-मरण का चक्र, जो जीवन का पर्याय है, उसका दर्शन पतझड़ से मिलता है। 'पतझड़' शब्द मृत्यु नामक घटना का आश्वासन बन जाता है। इस प्रकार पतझड़ पतन ही नहीं, नूतन की पूर्वभूमिका भी है। झरते पत्ते भी सौंदर्य का अपार अनुभव कराते हैं। जैसे हंसती नारी का सौंदर्य होता है, वैसे ही रोती नारी का भी सौंदर्य होता है। क्या आपने कभी गालों पर आंसू टपकते हुए किसी शकुंतला को ध्यान से निहारा है?

नीम, आम, पलाश, पीपल, वट या कमल, किसी भी वृक्ष के पास जाइए। सभी वृक्षों का चेहरा वेदनामय होते हुए भी प्रसन्न दिखाई देता है। झरते पत्ते यानी झरते आंसू। संसार से विरक्त योगी की तरह खड़े वृक्षों की शोभा निराली होती है। यदि लेना आता है तो छोड़ना भी आना

चाहिए। खिले फूल संध्या को झर जाते हैं, यह न्याय है, यह सत्य है। जीवन के संदर्भ में भी यह उतना ही सत्य है। क्या ध्यान और चिंतन का समय मानो पतझड़ ही नहीं है? जैसे प्रातःकाल ध्यान-योग का अधिक लाभ मिलता है, वैसे ही ऋतुओं में पतझड़ काल है।

सामान्यतः माघ महीने में पतझड़ आता है। प्रकृति के रंगमंच पर पतझड़ का नाटक सदा प्रथम स्थान पर रहा है। इसमें कलाकार और विषयवस्तु के साथ-साथ उससे प्राप्त तात्त्विक दर्शन का भी बड़ा महत्त्व है। केसरिया, लाल, भूरा और पीला, इन रंगों की कूची अदृश्य हाथों से प्रकृति के कैनवस पर कैसे घूम रही है! रंगों के अनुपम सौंदर्य का सृजन करने वाला वह चित्रकार कौन होगा? कहां होगा? जीवन की क्षणिकता का पाठ रंग सिखाते हैं और आने-जाने का पाठ झरते पत्ते पढ़ाते हैं। जीवनदर्शन की गीता पतझड़ के पृष्ठों में संजोई है। झरते पत्ते उस गीता के श्लोक हैं। मनुष्य के जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव पतझड़ डालता है। जब कवि और साहित्यकार विरह को पतझड़ से जोड़ते हैं, तब वे पतझड़ का अपमान करते हैं। वृद्धावस्था को भी पतझड़ का पर्याय मानने वाले लोग भूल करते हैं। लिखावट पक्की हो जाने पर पट्टी से मिटानी पड़ती है और फिर नई लिखावट शुरू होती है, प्रकृति पट्टी है और पतझड़ मिटने की घटना। पतझड़ पीले रंग की ऋतु है। पीला रंग धारण करने से पहले कितने ही रंगों की छाया से गुजरना पड़ता है। पीतिमा प्राप्त करने के लिए जीवन के सभी रंगों से होकर गुजरना होता है, यह तत्त्वदर्शन भी मानव के लिए उपकारक है।

हिंदू पंचांग बनाने वालों ने पतझड़ को शिशिर की उपऋतु में भले ही समाहित किया हो, पर पतझड़ का अपना इतना बड़ा वैभव है, इतनी बड़ी प्रतिष्ठा है कि कवि ने गाया है कि 'पतझड़ में गेहूं पैदा होता है।' वहां कवि शिशिर को भुलाकर पतझड़ के गुणगान करता है। पतझड़ वसंत की प्रस्तावना है, इसके हर शब्द से आने वाले कल की आशा के निमंत्रण पड़े जा सकते हैं। हेमंत, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा और शरद, इनमें पतझड़ का नाम नहीं, फिर भी उसका मान है। साहित्य में पतझड़ पर जो लिखा गया है, उसमें वेदना का पक्ष अधिक रहा है। वृद्ध की असहायता को भी पतझड़ का पर्याय माना गया है। एक सुभाषित है-



'पीपल के पत्ते झरते हैं,
हंसती कोंपलें कहती हैं,
जैसे हमें बीत रहा है,
वैसे तुम्हें भी बीतेगा, धैर्यवानो।'

यहां झरते पत्ते कोंपलों को उपालंभ देते हैं, हम जैसी स्थिति में हैं, वैसी तुम्हारी भी आने वाली है। पर कोंपलें तो सदा हंसती ही रहती हैं, झरते पत्तों को देखकर हंसना, यह कल्पना हमारे लोककवि की है। झरते पत्ते एक ऊंचाई हैं, प्रतिष्ठा हैं, पद हैं। उस ऊंचाई को प्राप्त करने वालों को समझना चाहिए, पतझड़ का पद मिलने के बाद कोई और पद शेष नहीं रहता। इसलिए जो है, उसे भी हृदय से बांट देना है, खैरात कर देना है, दे देना है। झरना दान की घटना नहीं, वैराग्य की घटना है। त्याग भी नहीं, क्योंकि त्याग में मैंने छोड़ा का सूक्ष्म अहं रहता है। पतझड़ तो सहज झरने की प्रक्रिया है। त्याग एक क्रिया है, पतझड़ एक सहज प्रक्रिया। सहजता से संसार छूट जाने पर आत्म-परिचय के द्वार खुलते हैं। पतझड़ प्रकृति को नूतन द्वार तक ले जाने वाली प्राकृतिक पगडंडी है। आइए, पतझड़ के वैभवशाली सौंदर्य से जीवन का पाठ ग्रहण करें।

भानु झा
भागलपुर

गज़ल

भाऊराव महंत
ग्राम बटरमारा, पोस्ट खोरा

(1)

बस निशाने पे ये तीर लग जाए
हाथ राँझे के अब हीर लग जाए

तेरी भी उम्र अब हो गयी है
तेरे पैरों में जंजीर लग जाए

जाने कब झूठी दुनिया में हम पर
कोई इल्जाम गंभीर लग जाए

वो इसी ताक में हैं कि उनके
हाथ बाक्री का कश्मीर लग जाए

जाने किस वक्रत दीवार पर यार
अपनी भी एक तस्वीर लग जाए

(2)

मुश्किलों से तो बाहर निकल देखेंगे
हम तो कीचड़ में खिलता कमल देखेंगे

कल की मुश्किल को हम यार कल देखेंगे
सामने है जो उसका ही हल देखेंगे

लाख रहते हों वो झोपड़ी में मगर
ख्वाब में तो वो केवल महल देखेंगे

आपके सारे वादे तो वादे ही हैं
कितना होता है इन पर अमल, देखेंगे

पूरी रस्सी यहाँ जल गयी है मगर
इसमें कितना बचा है ये बल, देखेंगे

अपनी नेकी बदी* का यहाँ हम सभी
एक दिन तो यक़ीनन ही फल देखेंगे

(1)

मैं नहीं तैयार उससे दूर जाने के लिए।
जा रहा हूँ पर उसे खुश देख पाने के लिए।

लाख फ़न थे पास मेरे किंतु उसकी चाह कुछ,
इसलिए नाकाम हूँ उसको हँसाने के लिए।

हुस्न का अंगार जलता रह गया मेरे क़रीब
खाज मैं माचिस रहा दीया जलाने के लिए।

पैंतरे सारे वही मैं आजमाता रह गया,
जो पुराने हो चुके थे इस ज़माने के लिए।

ले गया वो छीन अपने साथ में सारे सबूत,
हाथ कुछ आया न मेरे कुछ बताने के लिए।

वह समझ मुझको गया पर मैं उसे समझा नहीं,
रच रहा था खेल जो मौका भुनाने के लिए।

ज़ख्म भीतर के भला कैसे दिखाऊँ मैं तुम्हें,
इसलिए लिखता ग़ज़ल हूँ दर्द गाने के लिए।

(2)

जो सत्ता का गाना गाए।
मुझको तो वह एक न भाए।

बात नहीं सुनता गर बेटा
कह दे बाप कि भाड़ में जाए।

चिड़िया को मालूम नहीं है,
छुपा शिकारी जाल बिछाए।

पहचाने जाते आफ़त में,
कौन हैं अपने कौन पराए।

जानबूझकर जो हैं भटके,
उनको रास्ता कौन दिखाए।

खाई में गिरना तो तय है,
अंधा ही जब राह सुझाए।

'जुगनू मुझको छेड़ रहा है'
अंधकार आरोप लगाए।



बारह ज्योतिर्लिंगों में प्रथम ज्योतिर्लिंग श्री सोमनाथ महादेव मंदिर सोमनाथ स्वाभिमान पर्व : हजार साल की यात्रा का पर्व



आकांक्षा यादव

कॉलेज में प्रवक्ता। साहित्य, लेखन और ब्लॉगिंग के क्षेत्र में भी प्रवृत्त। नारी विमर्श, बाल विमर्श और सामाजिक मुद्दों से सम्बंधित विषयों पर प्रमुखता से लेखना। लेखन-विधा- कविता, लेख, लघुकथा एवं बाल कविताएँ। अब तक 4 पुस्तकें प्रकाशित- 'प्रकृति, संस्कृति और स्त्री' (2023), 'आधी आवादी के सरोकार' (2017), 'चौद पर पानी' (बाल-गीत संग्रह-2012) एवं 'क्रांति-यज्ञ : 1857-1947 की गाथा' (संपादित, 2007)।

देश-विदेश की प्रायः अधिकतर प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं और इंटरनेट पर वेब पत्रिकाओं व ब्लॉग पर रचनाओं का निरंतर प्रकाशन। व्यक्तिगत रूप से 'शब्द-शिखर' और युगल रूप में 'बाल-दुनिया', 'समरंगी प्रेम' व 'उत्सव के रंग' ब्लॉग का संचालन। 60 से अधिक प्रतिष्ठित पुस्तकों/संकलनों में रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी से समय-समय पर रचनाएँ, वार्ता इत्यादि का प्रसारण। व्यक्तित्व-कृतित्व पर डॉ. राष्ट्रबंधु द्वारा सम्पादित 'बाल साहित्य समीक्षा' (नवम्बर 2009, कानपुर) का विशेषांक जारी।

संपर्क: आकांक्षा यादव, पोस्टमास्टर जनरल आवास, बंगला नं.-22, कैटोनमेंट, शाही बाग, अहमदाबाद (गुजरात)-380004
ई-मेल: akankshay1982@gmail.com

भारतीय संस्कृति में शिव जी की महिमा अपरंपार है। उनका नाम लेते ही मन में एक अद्भुत ऊर्जा का अनुभव होता है। शिव, आदिम योगी, भौतिक रूप से परे हैं, और प्रकृति के पांच आवश्यक तत्वों - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश - का प्रतीक हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से पंचभूत के रूप में जाना जाता है। सृष्टि के आरंभ में शिव इन पाँच शक्तियों का प्रकटीकरण करते हैं और प्रलय के समय इन्हें अपने भीतर समाहित कर लेते हैं। इसके बीच वे इन शक्तियों का प्रयोग सृजन (सृष्टि), संरक्षण (स्थिति), संहार (विनाश या परिवर्तन), गुप्तीकरण (तिरोभाव) और प्रकटीकरण (अनुग्रह) के लिए करते हैं। भगवान शिव के 5 मुख्य रूप, जिन्हें पंचमुखी स्वरूप कहा जाता है, हैं: सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, और ईशान, जो पाँच तत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) और पाँच दिशाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, और सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव (छिपाना) और अनुग्रह (मोक्ष) के कार्य से जुड़े हैं।

शिव की आराधना हमारे जीवन में सकारात्मकता का संचार करती है। हिन्दू धर्म में पुराणों के अनुसार शिवजी जहाँ-जहाँ स्वयं प्रकट हुए उन बारह स्थानों पर स्थित शिवलिंगों को ज्योतिर्लिंगों के रूप में पूजा जाता है। भारत के 12 ज्योतिर्लिंगों के नाम हैं: सोमनाथ (गुजरात), मल्लिकार्जुन (आंध्र प्रदेश), महाकालेश्वर (मध्य प्रदेश), ओंकारेश्वर (मध्य प्रदेश), केदारनाथ (उत्तराखंड), भीमशंकर (महाराष्ट्र), काशी विश्वनाथ (उत्तर प्रदेश), त्र्यंबकेश्वर (महाराष्ट्र), वैद्यनाथ (झारखंड), नागेश्वर (गुजरात), रामेश्वरम (तमिलनाडु), और घृष्णेश्वर (महाराष्ट्र)।

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्। उज्जयिन्यां महाकालमोंकारं

ममलेश्वरम् ॥

परल्यां वैजनाथं च डाकियन्यां भीमशंकरम्। सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं

दारुकावने ॥

वारणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमी तटे। हिमालये तु केदारं धृष्णेशं च

शिवालये ॥

एतानि ज्योतिर्लिंगानि सायं प्रातः पठेन्नरः। सप्तजन्मकृतं पापं स्मरेण

विनश्यति ॥

इति द्वादश ज्योतिर्लिंग स्तुति संपूर्णम् ॥

भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिम में अरब सागर के तट पर स्थित आदि ज्योतिर्लिंग श्री सोमनाथ महादेव मंदिर की छटा ही निराली है। यह तीर्थस्थान देश के प्राचीनतम तीर्थस्थानों में से एक है और इसका उल्लेख स्कंदपुराण, श्रीमद्भागवत गीता, शिवपुराण आदि प्राचीन ग्रंथों में भी है। वहीं ऋग्वेद में भी सोमेश्वर महादेव की महिमा का उल्लेख है। यह लिंग शिव के बारह ज्योतिर्लिंगों में से पहला ज्योतिर्लिंग माना जाता है।

सूबेदार अल जुनैद ने किया था। इस हमले में मंदिर को ज्यादा नुकसान नहीं पहुँचा था। मकसद अरब सत्ता का विस्तार करना था। इस जगह पर द्वितीय बार मन्दिर का पुनर्निर्माण सातवीं सदी में वल्लभी के मैत्रक राजाओं ने किया। आठवीं सदी में सिन्ध के अरबी गवर्नर जुनायद ने इसे नष्ट करने के लिए अपनी सेना भेजी। गुर्जर प्रतिहार राजा नागभट्ट ने 815 ईस्वी में इसका तीसरी बार पुनर्निर्माण किया। इस मन्दिर की महिमा और कीर्ति दूर-



गुजरात राज्य के सौराष्ट्र क्षेत्र के गिर सोमनाथ ज़िले के प्रभास पाटन में अरब सागर तट पर स्थित सोमनाथ मन्दिर के बारे में कहा जाता है कि इसका निर्माण स्वयं चन्द्रदेव ने किया था। ऐसी मान्यता है कि सोम अर्थात् चन्द्र ने, दक्ष प्रजापति की 27 कन्याओं से विवाह किया था। लेकिन उनमें से रोहिणी नामक अपनी पत्नी को अधिक प्यार व सम्मान दिया करता था। इस अन्याय को होते देख क्रोध में आकर दक्ष ने चन्द्रदेव को शाप दे दिया कि अब से हर दिन तुम्हारा तेज (काँति, चमक) क्षीण होता रहेगा। फलस्वरूप हर दूसरे दिन चन्द्र का तेज घटने लगा। शाप से विचलित और दुःखी सोम ने भगवान शिव की आराधना शुरू कर दी। अन्ततः शिव प्रसन्न हुए और सोम-चन्द्र के शाप का निवारण किया। सोम के कष्ट को दूर करने वाले प्रभु शिव का स्थापन यहाँ करवाकर उनका नामकरण हुआ "सोमनाथ"।

प्राचीन व ऐतिहासिक शिव जी को समर्पित सोमनाथ मन्दिर हिन्दू धर्म के उत्थान-पतन के इतिहास का प्रतीक रहा है। सर्वप्रथम एक मन्दिर ईसा के पूर्व में अस्तित्व में था। सोमनाथ पर पहला आक्रमण 725 ई. में सिन्ध के

दूर तक फैली थी। 13 मंजिला इस मंदिर के गुम्बद सोने के बने थे, जो दूर से ही चमकते थे, अरब यात्री अल-बरूनी ने अपने यात्रा वृत्तान्त में इसका विवरण लिखा जिससे प्रभावित हो महमूद गज़नवी ने सन 1026 में सोमनाथ मन्दिर पर हमला किया, उसकी सम्पत्ति लूटी और उसे नष्ट कर दिया। सोमनाथ के बारे में अल-बरूनी ने लिखा था, "सोमनाथ का मंदिर पत्थर का बना था। इसका निर्माण महमूद के हमले से करीब 100 साल पहले किया गया था। ये क़िलेनुमा इमारत के अंदर था, जो तीन तरफ़ से समुद्र से घिरा हुआ था।" महमूद गज़नवी ने अपने 32 साल के शासनकाल में भारत पर 17 हमले किए। महमूद गज़नवी का सबसे बड़ा और आखिरी अभियान सोमनाथ के मंदिर का था। उसने सोमनाथ मंदिर से अनुमानित 6 टन सोना लूटा। इसके बाद गुजरात के चालुक्य वंश के राजा भीम प्रथम और मालवा के राजा भोज ने इसका पुनर्निर्माण कराया। नया मंदिर राख से फ़ीनिक्स पक्षी की तरह उठ खड़ा हुआ। उसमें ज्योतिर्लिंग की फिर से स्थापना हुई। लेकिन 12वीं सदी में गोर वंश के मोहम्मद गोरी ने एक बार फिर उस मंदिर को खंडहर में बदल दिया। सन 1297 में जब दिल्ली सल्तनत ने गुजरात पर कब्ज़ा किया तो इसे पाँचवीं बार गिराया गया। मुगल बादशाह औरंगजेब ने इसे

पुनः 1706 में गिरा दिया।

कहा जाता है कि पिछली कई शताब्दियों में अत्यन्त वैभवशाली होने के कारण सोमनाथ के मंदिर को इतिहास में 17 बार लूटा या तोड़ा गया। सोमनाथ मंदिर के तोड़े जाने के साथ ही इसके पुनर्निर्माण की भी एक लम्बी दास्ताँ है। सन 1225 में भाव बृहस्पति द्वारा लिखी गई सोमनाथ की प्रशस्ति के अनुसार सोमनाथ का प्रथम मंदिर सोम ने बनवाया था। दूसरे युग में लंकापति रावण ने उसे रजत चांदी में बनवाया, श्रीकृष्ण ने उसे काष्ठ का बनवाया, भीमनाथ सोलंकी ने उसे शिला का बनवाया और आखिर में सोलंकी वंश के राजा कुमारपाल ने 12वीं सदी में सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण का एक बार फिर बीड़ा उठाया। 18वीं सदी में इंदौर की महारानी अहिल्याबाई की देखरेख में सोमनाथ के मंदिर को दोबारा बनाया गया

स्वतंत्रता पश्चात जूनागढ़ के भारत में विलय के बाद, भारत के प्रथम उपप्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण का प्रस्ताव रखा, जिसे उन्होंने भारतीय एकता के प्रतीक के रूप में देखा। वहाँ भाषण देते हुए उन्होंने कहा, "हमलावरों ने इस जगह का जो अपमान किया है, बीते दिनों की बात हो गई है। अब समय आ गया है कि सोमनाथ के पुराने वैभव को फिर से स्थापित किया जाए। अब ये पूजा का मंदिर मात्र नहीं रहेगा बल्कि संस्कृति और हमारी एकता का प्रतीक बनकर उभरेगा।" इसी क्रम में सौराष्ट्र के पूर्व राजा दिग्विजय सिंह ने 8 मई 1950 को वर्तमान मन्दिर की आधारशिला रखी तथा 11 मई 1951 को भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उद्घाटन समारोह में मन्दिर में प्राण—प्रतिष्ठा किया। तब उद्घाटन करते हुए देश के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था, "अपनी राख से फिर उठ खड़ा होकर यह सोमनाथ मंदिर दुनिया के सामने घोषणा कर रहा है कि जिस वस्तु के प्रति लोगों के मन में असीम श्रद्धा और प्रेम होता है, उसे कोई व्यक्ति और कोई शक्ति कभी नष्ट नहीं कर सकती।" नवीन सोमनाथ मन्दिर 1962 में पूर्ण निर्मित हो गया। लेकिन सरदार पटेल इस मंदिर के पूर्ण होने तक जीवित नहीं रहे और 15 दिसंबर, 1950 को उनका देहावसान हो गया। उनके बाद मंदिर के निर्माण की ज़िम्मेदारी कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने संभाली।

सोमनाथ मंदिर विध्वंस के 1000 वर्ष पर 11 जनवरी 2026 को 'सोमनाथ स्वाभिमान पर्व' मनाया गया। बकौल प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी, "सोमनाथ स्वाभिमान पर्व, 1000 साल पहले हुए विध्वंस के स्मरण के लिए ही नहीं, ये पर्व हजार साल की यात्रा का पर्व है। साथ ही, ये हमारे भारत के अस्तित्व और अभिमान का पर्व है। क्योंकि, हमें हर कदम पर, हर मुकाम पर सोमनाथ और भारत में अनोखी समानताएं दिखती हैं। जैसे सोमनाथ को नष्ट करने के एक नहीं, अनेकों प्रयास हुए,

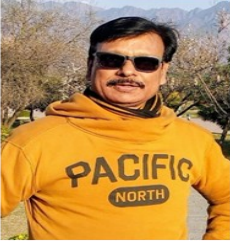
दुष्प्रयास हुए, उसी तरह, विदेशी आक्रांताओं द्वारा कई सदियों तक भारत को खत्म करने की लगातार कोशिशें होती रहीं। लेकिन न सोमनाथ नष्ट हुआ, और न ही भारत नष्ट हुआ! क्योंकि, भारत और भारत की आस्था के केंद्र, एक दूसरे में समाये हुए हैं।"

सोमनाथ मन्दिर के दक्षिण में समुद्र के किनारे एक स्तम्भ है। उसके ऊपर एक तीर रखकर संकेत किया गया है कि सोमनाथ मन्दिर और दक्षिण ध्रुव के बीच में पृथ्वी का कोई भूभाग नहीं है (आसमुद्रान्त दक्षिण ध्रुव पर्यंत अबाधितऽ ज्योतिर्मार्ग)। इस स्तम्भ को 'बाणस्तम्भ' कहते हैं।

यह भी एक अद्भुत संयोग है कि भगवान श्री कृष्ण ने देह त्यागकर यहीं से वैकुण्ठ गमन किया। ऐसी मान्यता है कि श्रीकृष्ण सोमनाथ स्थित भालुका तीर्थ पर विश्राम कर रहे थे। तब ही शिकारी ने उनके पैर के तलुए में पद्मचिह्न को हिरण की आँख जानकर अनजाने में तीर मारा था। तब ही इस स्थान पर बड़ा ही सुन्दर कृष्ण मन्दिर बना हुआ है। इसके अलावा यहाँ तीन नदियों हिरण, कपिला और सरस्वती का महासंगम होता है। इस त्रिवेणी स्नान का विशेष महत्त्व है।

हर ज्योतिर्लिंग अपने आप में भगवान शिव जी का संदेश लिए हुए है। जरूरत है कि प्रार्थना के साथ-साथ उस भाव को भी जीवन में आत्मसात किया जाए। आधुनिक दौर में शिव जी की प्रासंगिकता गहरी है क्योंकि वे आंतरिक शांति, ध्यान, संयम, सादगी और प्रकृति से जुड़ाव सिखाते हैं, जो भौतिकवादी दुनिया के तनाव और अतिरेक के लिए ज़रूरी है। भगवान शिव ने जीवनदायिनी गंगा नदी का भार अपने मस्तक पर धारण करके बतला दिया कि सादगी और तप का जीवन बिताने वाले ही कठिनाइयों को पार कर सकते हैं, भोग- विलास में फंसे हुए कुछ नहीं कर पाते। भगवान शिव का आदर्श है अपनी आवश्यकताएं कम से कम रखना, प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर उपयोग करना अपनी धन-सम्पत्ति दूसरों के उपभोग हेतु वितरण कर देना, थोड़े में ही संतोष करना, ऐश्वर्य और वैभव का त्याग। इसीलिए, शिव जी को 'आशुतोष' भी कहा गया है। वे योग के आदि गुरु, परिवर्तन के प्रतीक (संहारक और सृष्टिकर्ता दोनों), और 'शून्य' की अवधारणा से जुड़े हैं, जो ब्रह्मांड के मौलिक स्वरूप को समझाते हैं, जिससे हमें आत्म-ज्ञान और जीवन के रहस्यों को समझने में मदद मिलती है। वे गृहस्थ जीवन और आध्यात्मिकता के संतुलन का आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जो आज के युवाओं और हर व्यक्ति के लिए प्रासंगिक है।





डॉ. अजय कुमार ओझा

पूर्व संवाददाता, यूनाइटेड न्यूजपेपर्स, दिल्ली
पूर्व वरिष्ठ कार्यक्रम अधिकारी (दूरदर्शन)
एडवोकेट, भारत का सर्वोच्च न्यायालय

संस्मरण

डॉ. इंद्र सेंगर के अमृत महोत्सव (17.02.2026) के अवसर पर संस्मरण ऐसा व्यक्तित्व ही है डॉ. इन्द्र सेंगर जी का...

मैं इस महानुभाव डॉ. इन्द्र सेंगर को नहीं जानता था, जानने का कभी अवसर भी नहीं मिला, मिलने का भी नहीं जबकि मैं दूरदर्शन में कार्यरत था और अधिकांश समय दिल्ली में ही व्यतीत किया - दूरदर्शन महानिदेशालय में। आज मैं इस व्यक्ति और इस व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में लिखने बैठा हूँ।

दूरदर्शन से सेवानिवृत्ति के उपरांत मैंने तय किया कि मैं फिर से कहीं भी काम नहीं करूँगा। अबतक जो मैंने नहीं किया है या नहीं कर सका वह मुझे करना है - ऐसा मैंने निर्णय लिया। और झोंक दिया अपने आप को पुस्तकों की पाण्डुलिपि तैयार करने में। कई पुस्तकों की पाण्डुलिपि भी तैयार हो गई पर कोई विश्वासी प्रकाशक नहीं मिल पा रहा था। बहुत से प्रकाशक माफिया की तरह काम करते हैं, लेखक से ज्यादा पैसे लेते हैं, लेखक को उचित रॉयल्टी भी नहीं देते, लेखक को अंधकार में रखते हैं। तो मैं एक अच्छे प्रकाशक की तलाश में था। उसी क्रम में मेरी बात एक दिन नागरी लिपि परिषद् के महामंत्री और मेरे मित्र डॉ. हरिसिंह पाल से हुई। उन्होंने झट दो-तीन प्रकाशकों के मोबाइल नंबर दिए। उसमें से एक नंबर डॉ. इन्द्र सेंगर जी का था। मैंने उनसे अनुरोध किया कि सिर्फ नंबर देने से काम नहीं चलेगा - आप उनको फोन कीजिए, मेरे बारे में बताइए और मुझसे भी बात कराइए तब प्रभाव पड़ेगा नहीं तो ये प्रकाशक भी हमारे साथ औपचारिकता निभाएगा।

तो पहली बार इस महानुभाव से मेरी फोन पर आजकल मोबाइल कह लीजिए, बात हुई। लगा ही नहीं कि पहली बार बात हो रही है, इतना अपनापन था उनकी बातों में, इतनी मिठास थी उनकी बोली में और इतनी सहजता व स्वाभाविकता थी उनकी भाषा में। मैं बहुत प्रसन्न हुआ उनसे पहली बार बात करके। मैंने उनसे कहा कि जब कभी भी समय मिलेगा मैं आपके निवास पर आऊँगा।



पर मैं सोचने लगा कि यह व्यक्ति पुस्तक प्रकाशक है, एक तरह से व्यवसायी है इसलिए मीठी मीठी बातें कर रहा है। खैर बात हुई है तो उनसे मिलने जाएंगे ही। और एक दिन समय मिलने पर और फिर उनसे भी समय मिलने पर दिल्ली के शाहदरा में स्थित विश्वास नगर के उनके आवास की तरफ चल पड़ा। किसी तरह से विश्वास नगर पहुँच तो गया पर डॉ. इन्द्र सेंगर के आवास के समीप पहुँच कर भी भ्रमित हो गया, मार्ग भटक गया। समझ में नहीं आ रहा था

कि किधर जाऊँ - इधर जाऊँ या उधर जाऊँ, बड़ी मुश्किल में था किधर जाऊँ ? जब कुछ नहीं सूझा तो मैंने मोबाइल से उनसे संपर्क किया।

कुछ ही देर में देखता हूँ एक दुबला पतला औसत कद का वरिष्ठ और बुजुर्ग व्यक्ति मेरे सामने था - “आप अजय जी” ? मैंने कहा आश्चर्य से “जी, जी” । “जी मैं इन्द्र सेंगर”। मैं दंग रह गया - किंकर्तव्यविमूढ़। इतना बुजुर्ग आदमी दिल्ली जैसे मेट्रो शहर में स्वयं मेरे समक्ष - मुझे सकुशल अपने घर ले जाने के लिए। गाँव में ही ऐसा ज्यादातर देखने को मिलता है - शहर में कहाँ ?

कुछ ही देर में मैं उनके आवास पर था। नीचे ही ग्राउंड फ्लोर पर उनके प्रकाशन का कार्यालय था एक पोस्ट ऑफिस के बिल्कुल बगल में। कमरे में बहुत सारी पुस्तकें रखी हुई थीं। वहीं पर इन्द्र सेंगर जी ने मुझे बैठाया - अपने चेहरे पर निश्छल, निष्कपट, निर्व्यलीक मुस्कान बिखेरते हुए। फिर वे कुछ देर के लिए अदृश्य हो गए।

थोड़ी देर के बाद सेंगर साहब प्रकट हुए - हाथ में एक प्लेट लेकर और जल भी। प्लेट में कुछ खाद्य सामग्री थी - कटे हुए कुछ फल जैसे केला व सेब। और फिर देखता हूँ एक छोटा बच्चा नमकीन का प्लेट लेकर भी आ गया। उनका नाती था। मुझे तो समझ नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है ? अभी तो मैं पहुँचा ही था। पर उनके अपार निस्वार्थ स्नेह की गंगा मेरे लिए अबाध गति से प्रवाहित हो रही थी।

इतना प्यार, इतना अपनापन, इतना अपनत्व, इतनी आत्मीयता। ऐसा विरले ही होता है और ऐसे व्यक्तित्व भी विरले ही होते हैं और वह भी इतने बड़े मेट्रो शहर में जहाँ बगल वाले को नमस्कार करने पर पूछा जाता है कि आप मुझे पहचानते हैं - जैसे इंसान का ये शहर ही नहीं रहा गया हो, इंसानियत की तो बात ही छोड़ दीजिये। ठीक ही कहा गया है -

“कोई हाथ भी न मिलाएगा जो गले मिलोगे तपाक से, ये नये मिज़ाज का शहर है ज़रा फासले से मिला करो।”

फिर बातचीत आगे बढ़ती है, मैं अपना परिचय देता हूँ विस्तार से। उन्हें बताता हूँ कि मैं अपनी रचनाओं के साथ साथ अपने बाबूजी बिहार विभूति आचार्य रवीन्द्रनाथ ओझा जी की रचनाओं पर भी काम कर रहा हूँ। मैंने उनको बताया कि बाबूजी बहुत सारी अप्रकाशित शाश्वत मूल्यों की रचनाओं को छोड़कर अचानक हमलोगों को छोड़ कर ब्रह्मलीन हो गए। उनका नाम सुनकर वे चौंक गए - उन्होंने कहा कि ये नाम तो जाना पहचाना लग रहा है। उनके लम्बे लम्बे पत्र मेरे गुरुदेव स्व. आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' जी के यहाँ आया करते थे और मेरे गुरुदेव की मेलिंग लिस्ट में भी उनका नाम था। डॉ. सेंगर कहने लगे कि आचार्य रवीन्द्रनाथ ओझा जी की भाषा बहुत ही समृद्ध थी - प्रांजलमयी, प्रवाहमयी, प्रभावमयी। मैं अत्यंत प्रभावित था उनसे और क्या संयोग है कि उनके अंश, उनके बड़े पुत्र डॉ. अजय कुमार ओझा से मुलाकात हो रही है। इस प्रसंग ने मुझे पहले ही दिन डॉ. इन्द्र सेंगर को मेरे करीब ला दिया। एक तो उनका सहज, सरल, सौम्य, शांत, सुशील और शालीन स्वभाव और ऊपर से मेरे बाबूजी आदरणीय आचार्य रवीन्द्रनाथ ओझा से पूर्व परिचय। और हृद तो तब हो गयी जब उन्होंने पहले ही दिन मुझे दोपहर के भोजन के लिए भी बेझिझक, बेहिचक अपने घर में चलने के लिए आमंत्रित किया। घर उनका ऊपर ही था। वस्तुतः पूरा भवन ही उन्हीं का था - नीचे 'रचना पब्लिकेशंस' का कार्यालय और ऊपर दो फ्लोर आवास। उनके स्नेहसिक्त अनुरोध को मैं ठुकरा न सका। सकुचाते हुए, कुछ हिचकिचाते हुए मैं उनके साथ साथ बल्कि पीछे पीछे बगल में स्थित सीढ़ियों से ऊपर उनके आवास पर पहुँच गया। और फिर उनके साथ उनके घर का बना सुस्वादु भोजन का आनंद लिया। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे हम दशकों से एक दूसरे से परिचित हों। पहला दिन, पहला आमना-सामना, पहला परिचय पर लगा कि दशकों के सम्बन्ध से घनीभूत हुई घनिष्ठता हो, निकटता हो अंतरंगता हो।

कुछ दिनों के बाद मैंने अंग्रेजी की अपनी पहली पुस्तक "Frozen History" का ड्राफ्ट उनके पास भेजा - मेल से और कुछ चित्र भी कवर पेज के लिए। उनके द्वारा भेजे गए ड्राफ्ट को फाइनल करने के बाद उनके 'रचना पब्लिकेशंस' से मेरी पहली पुस्तक प्रकाशित हुई और सबसे आश्चर्य की बात कि उन्होंने अपने दामाद से इस पुस्तक की पचास प्रतियाँ मेरे आवास पर महरौली भिजवा दीं। कहाँ विश्वास नगर (शाहदरा) और कहाँ महरौली - कम से कम 30 किलोमीटर की दूरी। तो ऐसे हैं डॉ. इन्द्र सेंगर साहब। इसके बाद एक और पुस्तक "Wonderful Tharu

Tribe, Alluring Tharuhat and Charming Champran" का भी प्रकाशन यहीं से हुआ। और इस तरह सेंगर साहब से मिलने का, उनसे संवाद करने का, अपने विचार साझा करने का, चाहे घर पर जाकर या मोबाइल पर, सिलसिला चलता रहा जो आज भी जारी है।

बाद में मुझे मालूम हुआ कि डॉ. इन्द्र सेंगर भारत सरकार में हिन्दी अधिकारी भी रह चुके हैं। और यही नहीं विगत पाँच दशकों से ज्यादा से वे हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में लेखन के द्वारा समर्पित भाव से हिन्दी सेवा में संलग्न हैं और राजभाषा सेवा से भी जुड़े हुए हैं। और यही नहीं राजभाषा से पृथक बाल साहित्य, कहानी, उपन्यास, गीत एवं आलोचना विधाओं में उनकी अब तक दो दर्जन से से अधिक मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। और यही नहीं उनकी कहानियाँ, शोध लेख और गीत हिन्दी-जगत के सम्मानित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। उन्होंने अनेक ग्रंथों का सम्पादन भी किया है और अब तक चार दर्जन से अधिक स्तरीय पुस्तकों की भूमिकाएँ भी लिख चुके हैं।

और इतना ही नहीं। डॉ. इन्द्र सेंगर की साहित्यिक सेवाओं के लिए उन्हें अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित भी किया गया है। उनकी रचनाएँ आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित होती रही हैं। एक बात और। मैंने अपने चैनल @DrAjayKumarOjha के लिए उनका एक साक्षात्कार भी लिया है। इस साक्षात्कार को देखने के उपरांत मुझे और बहुत सारी बातें याद आ गईं। डॉ. इन्द्र सेंगर राजभाषा नीति के गिने-चुने विद्वानों में से एक हैं। इनका एक और वैशिष्ट्य है कि इन्होंने संत साहित्य पर भी बहुत काम किया है और इस क्षेत्र में भी अपनी एक पहचान बनाई है। इस सन्दर्भ में मुझे आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का स्मरण हो आया जो संत-परम्परा और संत-मत के सबसे अधिकृत और स्वीकृत विद्वान माने जाते हैं। दैवयोग से आचार्य परशुराम चतुर्वेदी मेरी पूज्य माता जी श्रीमती राधिका देवी के मामा हैं।

डॉ. इन्द्र सेंगर अखिल भारतीय हिन्दी कवि सभा के अध्यक्ष रहे हैं। प्रकाशकों की व्यापारिक नीति से आतंकित एवं त्रस्त लेखकों की दुर्दशा देखकर उन्होंने स्वयं प्रकाशन का कार्य भी आरम्भ कर दिया जिसमें व्यापारिक नीति के स्थान पर साहित्यकार की नीति अपनाई जाती है ताकि साहित्यकारों-रचनाकारों की पुस्तकें पारदर्शिता के साथ साथ उचित शुल्क पर प्रकाशित की जा सकें। डॉ. सेंगर अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ के भी अध्यक्ष रह चुके हैं।

तो अब मैं इस महानुभाव डॉ. इन्द्र सेंगर को बहुत कुछ जान गया हूँ, उनकी असाधारण साहित्यिक उपलब्धियों को पहचान गया हूँ, उनके अद्भुत बहुआयामी व्यक्तित्व का सही सही आकलन कर गया हूँ। स्वभाव की सहजता, मन की निर्मलता, हृदय की निश्छलता, वाणी की मधुरता और सबसे बढ़कर अहंकार शून्यता डॉ. सेंगर जी की जीवन-शैली के मूल मंत्र हैं। पर अभी भी लगता है उनके बारे में अभी बहुत कुछ जानना है - ऐसा व्यक्तित्व ही है डॉ. इन्द्र सेंगर जी का।

हिंदी के पीछे विशाल दुनिया

हिंदी एक अरब 30 करोड़ लोगों द्वारा पढ़ी, लिखी, समझी या बोली जाती है। सभी भारतीय इन चार प्रक्रियाओं में से कोई न कोई करता है। भारत में 11 राज्यों की मातृभाषा भी हिंदी ही है। हिंदी समझने और बोलने वालों की संख्या हो या इंटरनेट पर हिंदी के विस्तार के आंकड़े, वे सभी उत्साहवर्धक हैं। आज दुनिया भर में 150 से ज्यादा देशों के 200 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। अमेरिका के 30 से ज्यादा विश्वविद्यालयों व शैक्षणिक संस्थाओं में हिंदी की पढ़ाई हो रही है। इसी तरह जर्मनी के 15 संस्थानों में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन हो रहा है। ब्रिटेन की लंदन, केंब्रिज और यार्क यूनिवर्सिटी में भी हिंदी पढ़ाई जाती है। चीन, जापान, हंगरी, रूस और देशों में भी हिंदी की पढ़ाई हो रही है। यही नहीं भारत की बेहतर जानकारी के लिए दुनिया भर में करीब सवा सौ संस्थानों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। विश्व में करीब 1 अरब से ज्यादा लोग न सिर्फ हिंदी बोल सकते हैं बल्कि इसे लिख और समझ भी रहे हैं।

विश्व में हिंदी तीसरे स्थान पर भले ही हो परंतु नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान मलेशिया ब्रिटेन अमेरिका जैसे देशों में हिंदी के जरिए भारतीयता भी विकसित हो रही है। इसी तरह फिजी, मॉरीशस, गुयाना, सूरीनाम में हिंदी को अल्पसंख्यक भाषा का दर्जा हासिल हो चुका है।

जापान, कोरिया, चीन, रूस, इंग्लैंड, इटली, जर्मनी, फ्रांस, कनाडा, अमेरिका, मेक्सिको आदि अनेक देशों में हिंदी भाषा और साहित्य पर शोध कार्य भी हो रहा है। मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, जुआना तथा सूरीनाम तो ऐसे देश हैं जहां भारतीय मूल की हिंदी प्रदेशों से ही लोग बसे हैं।

हमारी हिंदी सभ्यता, संस्कृति और संस्कारों की वाहिका बन विश्व भर में छा जाए, विश्व बंधुत्व की पवित्र भावना का उद्घोष जन जन के कंठों से मुखरित हो, शायद आज हर भारतीय और राष्ट्रप्रेमी की कामना यही होगी, वह हमारी अस्मिता है, सृजन यात्रा का पाथेय बन विश्व को राह दिखाती रही है। हिंदी के बिना भारत की कल्पना नहीं की जा सकती, कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक पूरे देश को एकता के सूत्र में बांधकर, विविध भाषाओं, धर्मों, संस्कृतियों को एक माला की तरह पिरोने वाली हिंदी आज हमारी पहचान है। हम चाहे बंगला भाषी

हों या तमिल, पंजाबी, गुजराती उन्हें समझने के लिए हिंदी ही एकमात्र वो माध्यम है, जो अभिव्यक्ति के आदान प्रदान में सहायक हो सकती है।

किसी भी राष्ट्र की प्रगति, और विकास उसकी भाषा, बोली, परिवेश, संस्कृति के आधार पर ही संभव हो सकता है। यदि अभिव्यक्ति सहज, सरल और सर्वजन ग्राह्य हो तो समाज के विभिन्न वर्गों से जुड़ने का मार्ग आसान हो जाता है, और हम विकास की योजनाओं को सरलता से जारी रख सकते हैं। अपनी संस्कृति, अपनी धरती, अपना आकाश अपना राष्ट्र, अपना संविधान, अपना भोजन, अपनी संस्कृति की अवधारणा जहां हो वहां अपनी भाषा की परिकल्पना भी अनिवार्य है, और होनी चाहिए।

एक भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ भारत की पहचान है, बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति और संस्कारों की सच्ची संवाहिका भी है, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने कहा था

निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल,
बिनु निज भाषा ज्ञान के,
मिटत न हिय को शूल

सांस्कृतिक भाषा ही किसी देश की संपर्क भाषा होती है, इसमें कोई संदेह नहीं और वर्तमान संदर्भ में हिंदी ने इसके पर्याप्त गुण अर्जित कर लिए हैं। निश्चय ही हिंदी भाषा की यह समाहार शक्ति हमारे देश की भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने में सहायक होगी।

सचमुच विकास की पहली सीढ़ी भाषा होती है। भारत को समझने, जानने और उसकी अंतरात्मा को महसूस करने के लिए हिंदी का ज्ञान आवश्यक है। क्योंकि यह सबसे अधिक सुगम, सरल और सहज भाषा है, वैज्ञानिक भाषा होने के कारण भी यह विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है, और विश्व भर में हर जगह बोली और समझी जाती है। भारत की संस्कृति, ज्ञान विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा पौराणिकता से परिचित होने के लिए भी हिंदी साहित्य का ज्ञान होना अति आवश्यक है।

स्वतंत्रता बाद के समय में हिंदी का क्रमिक विकास हुआ है, राष्ट्रभाषा के रूप में तो सर्व विदित है ही, विशेष प्रयोजनों में प्रयोग आने के कारण भी अनेक स्वरूप मिले हैं राजभाषा हिंदी, तकनीकी हिन्दी, कामकाजी हिंदी, जो उसके विकास की पहचान बने हैं। स्वतंत्रता के लिए लड़े जाने वाले संघर्ष में, जब पूरे देश में देश के लिए मर मिटने की बारी आई तो हिंदी ही सिरमौर और अद्भुत मार्गदर्शक बन कर सामने आई थी।

हिंदी अब प्रतियोगी परीक्षाओं में भी अपना प्रभुत्व दिखला रही है। नीट से लेकर संघ लोक सेवा आयोग तक हिंदी भाषा के माध्यम से छात्र परीक्षाएं दे रहे हैं। इन परीक्षाओं में हिंदी और भारतीय भाषाओं में परीक्षा देने वाले छात्रों की संख्या अंग्रेजी से अभी भी कम है लेकिन पास होने वाले छात्रों का औसत अधिक है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एम.बी.बी.एस. और इंजीनियरिंग की पढ़ाई को हिंदी में भी शुरू करवा दिया। अब सारे विषय हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में पढ़ाए जा सकते हैं।

हमारे देश में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा हिन्दी है, या यूं कहें कि हिंदी भारत की आत्मा है, उसके अंतर्गत आने वाली विभिन्न उप बोलियां भी हों और उनसे जुड़ने और उनको समझने के लिए भी हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित करना जरूरी है। हिन्दी भारत की पहचान और संस्कृति की सच्ची संवाहिका है।



डॉ संध्या शुक्ल 'मृदुल'

मंडला (म प्र)

मैं भारत की नारी हूं

फूलों सी कोमल मैं दिखती,
शोला और चिनगारी हूं,
मैं भारत की नारी हूं।

घर आंगन को हूं महकाती,
पावन उपवन क्या ही हूं,
मैं भारत की नारी हूं।

सृष्टि की मैं सुंदरतम कृति,
लगती बड़ी प्यारी हूं,
मैं भारत की नारी हूं।

सती, सीता और सावित्री,
इंदिरा और गांधारी हूं,
मैं भारत की नारी हूं।

अबला नहीं सबला हूं,
हर नारी से मैं भारी हूं,
मैं भारत की नारी हूं।

सृष्टि की मैं हूं रचयिता,
जगत जननी प्यारी हूं,
मैं भारत की नारी हूं।

करुणा और त्याग की मूरत,
संघर्षों से कभी न हारी हूं,
मैं भारत की नारी हूं।



डॉ मीरा सिंह "मीरा"

डुमरांव, जिला-बक्सर, बिहार

प्रेम सिखा जाओ

आओ श्याम सलोने आओ
जग को प्रेम सिखा जाओ।
भटक गए जो प्रेम डगर से
उनको राह दिखा जाओ॥

कुरुक्षेत्र है बना विश्व यह
आपस में सब तने हुए हैं।
नफरत ज्वाला धड़क रही है,
अपने ज़िद पर ठने हुए हैं।
मौन तोड़ने इस दुनिया की,
मुरली मधुर बजा जाओ।
आओ श्याम सलोने आओ,
जग को राह दिखा जाओ॥

यह जग बन जाए वृंदावन,
छेड़ो ऐसी तान मुरारी।
तेरे धुन पर लगे थिरकने,
सभी चराचर सब नर नारी॥
आया प्रेम दिवस है माधव
प्रेम सुधा बरसा जाओ।
आओ श्याम सलोने आओ,
जग को राह दिखा जाओ॥

छट जाए दुख दर्द कुहासा,
पलवित हो हर मन में आशा।
बढ़े जगत में भाईचारा,
प्रेम बने हर जन की भाषा॥
गोकुलधाम बने यह नगरी
ऐसी जुगत लगा जाओ।
आओ श्याम सलोनी आओ
जग को प्रेम सिखा जाओ॥



हिंदी गगन में प्रेमचंद का आलोक

(31 जुलाई जयंती विशेष)

जिस प्रकार प्राची का रवि अपनी रश्मियों के आलोक से सारे आसमान को आलौकिक कर जगत में एक नूतन ऊष्मा का संचार करता है उसी प्रकार हिंदी साहित्य के गगन में भास्कर प्रेमचंद ने अपनी किरणों की आभा से विश्व हिंदी मंच को प्रकाशित किया।

'हिंदी-दिनमणि' प्रेमचंद का प्रादुर्भाव 31 जुलाई 1880 को उत्तर प्रदेश के वाराणसी के लमही गांव के प्रांगण में मुंशी अजायब लाल के निकेतन में माता आनंदी देवी की कोख से एक साधारण परिवार में हुआ था। इनका वास्तविक नाम धनपत राय श्रीवास्तव था। जब यह 5 वर्ष के हुए तो इनकी माता का निधन हो गया। धनपत पर असहनीय दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा। इनके पिता ने दूसरी शादी कर ली परन्तु विमाता की कभी भी इनके साथ नहीं बनी। धनपत राय का 6 वर्ष की आयु में अपने गांव की पाठशाला में दाखिला कराया गया। उच्च शिक्षा के लिए अपने गांव से 8 किलोमीटर दूर वाराणसी, पैदल पढ़ने जाते थे। इस महान साहित्यकार ने बहुत ही तंगी और गरीबी में रहकर 1898 में वाराणसी के क्वींस कॉलेज से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर अपनी मेधा का परिचय दिया। दूसरी ओर हर समय घर में कलहपूर्ण वातावरण के कारण इनके पिता बीमार रहने लगे। अजायब लाल जी ने अपने निधन (1896) से पहले ही 1895 में 15 वर्ष की आयु में प्रेमचंद की शादी कर दी। प्रेमचंद का दाम्पत्य जीवन बहुत ही कष्टमय रहा। उनकी पत्नी और प्रेमचंद में आपसी तालमेल की कमी तथा पारिवारिक कटुता के कारण 1905 में यह वैवाहिक बंधन टूट गया।

इसके बाद प्रेमचंद ने 1906 में एक बाल विधवा शिवरानी देवी से प्रेम विवाह करके इस रूढ़िवादी प्रथा पर कठोर प्रहार करते हुए एक शानदार उदाहरण पेश किया। कालांतर में शिवरानी एक स्वतंत्रता सेनानी व समृद्ध लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हुई। इस विदुषी ने प्रेमचंद के जीवन पर आधारित संस्मरण 'प्रेमचंद घर में' सृजित कर

विश्व के महान उपन्यासकार, कथाकार, नाटककार तथा लेखक प्रेमचंद के निजी जीवन, उनकी आदतों, कमियों तथा उनके पारिवारिक जीवन-संघर्षों का बड़ी सुक्ष्मता से सटीक वर्णन कर अपनी लेखनी की धार से विश्व में लोहा मनवाया। कुटुम्ब संवर्धन के रूप में शिवरानी देवी से प्रेमचंद को तीन बच्चे हुए, जिनमें अमृतराय और श्रीपतराय पुत्र तथा कमला देवी पुत्री थी।

प्रेमचंद के शिक्षण की शुरुआत

हिंदी जगत के इस महान रचनाकार ने अपने शिक्षण कार्य की शुरुआत (1898 से 1900 के बीच) एक निजी विद्यालय में 18 रुपए प्रति मासिक वेतन पर की थी।

1901 में प्रेमचंद राजकीय सेवा में हिंदी अध्यापक के रूप में प्रविष्ट हुए। इन्होंने शिक्षक के रूप में अपनी सेवाएं गोरखपुर, इलाहाबाद, बहराइच, प्रतापगढ़ तथा महोबा में दी। व्यक्तिगत अध्ययन से 1919 में स्नातक उपरांत पदोन्नति से स्कूल इंस्पेक्टर के पद को सुशोभित किया। अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति को अच्छी तरह जानते हुए भी इस महान देशभक्त ने स्वाधीनता के लिए गांधी जी के आह्वान पर जून 1921 में अपनी नौकरी त्याग कर, स्वतंत्र रूप से इस

आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। "स्वतंत्रता के दीवानों के आगे पेट की भूख कोई मायने नहीं रखती"।

साहित्यिक सृजन यात्रा

इस अद्वितीय साहित्यिक पथिक ने बहुत ही कम उम्र में (1901) उर्दू में नवाब राय के नाम से लिखना आरंभ कर दिया था। इनकी उर्दू में पहली रचना "असरारे-मआबिद" मानी जाती है परंतु उनकी वास्तविक पहचान उर्दू की देश प्रेम पर आधारित पुस्तक 'सोजे-वतन' (देश का दर्द) से हुई जो अगस्त 1908 में (500 प्रतियां) प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक के नूतन प्रकाशन तथा बिक्री पर अंग्रेज अधिकारी हमीरपुर के जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर मार्क-कीन

ने पूर्णतया प्रतिबंध लगा दिया व इसे अंग्रेजी सरकार के लिए विद्रोहात्मक कृति माना। नवाबराय को भविष्य में ऐसा लेखन न करने की कठोर व सख्त चेतावनी दी गई। इस घटना के बाद धनपत राय ने सरकारी दबाव के कारण अपना नवाबराय नाम सदा-सदा के लिए त्याग दिया।

धनपत राय के मित्र 'जमाना' पत्रिका के संपादक दया नारायण निगम ने उन्हें सलाह दी कि अब आप अपना लेखन नाम बदलकर "प्रेमचंद" रखें ताकि अंग्रेजों की नजर से बच सकें। इस सुझाव को मानकर ही उन्होंने प्रेमचंद नाम अपनाया जो आगे चलकर हिंदी-साहित्य जगत में स्वर्णिम-अक्षरों में अमर हो गया।

प्रेमचंद और हिंदी साहित्य जगत

विश्व हिंदी साहित्य में "उपन्यास सम्राट" के नाम से प्रसिद्ध मां भारती के इस लाल ने विपुल मात्रा में हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में सृजन किया। अपनी लेखनी को तलवार मानने वाले इस महान योद्धा ने नाटक, कहानी, उपन्यास तथा लेख आदि अनेक विधाओं के धरातल को हिंदी स्वेद की लेखनी से अनवरत सींचा है। हिंदी लेखन के समृद्ध कोश में प्रेमचंद का महत्वपूर्ण योगदान है। इनका साहित्य हमें सिखाता है कि "कलम लेखक की आत्मा का आईना होती है, वे जो थे वहीं उन्होंने लिखा"। प्रेमचंद उपनाम से प्रकाशित होने वाली उनकी पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' थी जो 1910 में 'जमाना' अखबार में प्रकाशित हुई थी। सरस्वती पत्रिका में 1915 में उनकी सौत नामक कहानी प्रकाशित हुई थी। इनकी कहानियों में मुख्य रूप से ईदगाह, पंच-परमेश्वर, बड़े घर की बेटी, शतरंज के खिलाड़ी तथा पूस की रात प्रमुख हैं। उनका पहला हिंदी में 'सेवासदन' नामक उपन्यास 1918 में प्रकाशित हुआ था। प्रेमचंद जी की कीर्ति का मुख्य आधार इनका उपन्यास गोदान (1936) है जो वर्तमान भारतीय समाज की प्रासंगिकता पर सटीक बैठता है। यही इनका अंतिम पूर्ण उपन्यास था। इनके अधूरे उपन्यास का नाम मंगलसूत्र है जो इनकी मृत्यु के बाद इनके बड़े बेटे अमृतराय ने पूरा किया था। उन्होंने लगभग 300 कहानियां, 18 उपन्यास तथा 3 नाटक संग्राम, कर्बला तथा प्रेम की बेटी का सृजन किया। इनकी कहानियों की पुस्तक 'मानसरोवर' को आठ भागों में बांटा गया है। उन्होंने जोन् गाल्सवर्दी के विदेशी नाटकों का हिंदी में अनुवाद भी किया है।

मुंशी प्रेमचंद ने फिल्म जगत में भी अपनी किस्मत को आजमाया और उन्होंने एक ही हिंदी फिल्म 'मजदूर' की पटकथा लिखी जो 1934 में प्रदर्शित हुई। इस फिल्म में स्वयं मुंशी प्रेमचंद ने एक मजदूर नेता के रूप में एक छोटा सा अभिनय (कैमियो रोल) भी किया था। कालांतर में उनकी अनेक कहानियों और उपन्यासों पर फिल्में बनाई गईं।

प्रेमचंद के रचना संसार की भाषा व पात्र

"कलम के सिपाही" के साहित्य की भाषा अत्यंत

सरल, स्पष्ट, प्रवाहमयी, भावपूर्ण व हृदयस्पर्शी थी। उन्होंने अपने साहित्य में यथार्थवादी समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है। इनका साहित्य भी संघर्ष और प्रेरणाओं से परिपूर्ण था जिसमें दबे-कुचालों, किसानों, मजदूरों, गरीबों की आवाज की कसक और वेदना समाई है। उन्होंने साहित्य को मनोरंजन का साधन न मानकर समाज सुधार का माध्यम माना। उनकी माधुरी, हंस और जागरण जैसी पत्रिकाओं की भाषाओं में भी ग्रामीण परिवेश के दर्शन होते हैं। गोदान उपन्यास में गोबर, झुनिया, होरी महतो, धनिया शोभा व भोला, झिंगुरी सिंह तथा ईदगाह में हामिद, अमीना, नूरे तथा सम्मी इसके उदाहरण हैं। दूसरी ओर शहरी पत्रों में गोविंदी, मिस्टर खन्ना, मिस्टर महतो, मिस मालती, राय बहादुर अमरपाल सिंह, मिस्टर तन्खा, मिर्जा खुर्शेद तथा निर्मला उपन्यास में निर्मला, तोता राम व रंगभूमि में रामनाथ, विनय, सोफिया व अमरकांत आदि प्रमुख हैं।

प्रेमचंद के जीवन के अनछूए पहलु

पुरुषार्थी, जुझारू और जीवन में निरंतर संघर्षरत प्रेमचंद जी के जीवन पथ में अनेक घटनाएं ऐसी घटी जिनका इन पर शारीरिक, मानसिक, आर्थिक तथा सामाजिक प्रभाव जीवन पर्यन्त देखने को मिला। जिन में से कुछ का वर्णन इस प्रकार है--

निरन्तर आर्थिक तंगी

इस साहित्यिक पथिक का जीवन घोर आर्थिक तंगी में व्यतीत हुआ। 1921 में सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद वे जीवन भर कर्ज और आर्थिक अभावों से जूझते रहे। अपने जीवन के अंतिम दिनों में उनकी स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि उन्हें इलाज के लिए भी कई बार सोचना पड़ता था। एक बार पत्र में मुंशी प्रेमचंद ने लिखा था कि वह एक ऐसे कैदी हैं जिनके पैरों में बेड़िया हैं और वह भागना चाहते हैं। कलम का धनी जीवन भर निर्धन ही रहा।

सिनेमा का दुखदाई अनुभव

साहित्य में मिली लगातार सफलता के बाद प्रेमचंद ने 1934 में अपनी आर्थिक तंगी दूर करने के लिए मुंबई जाकर फिल्म पटकथा लिखने का फैसला किया। यहां पर उन्होंने मजदूर फिल्म की पटकथा भी लिखी परंतु मुंबई का वातावरण उनको साहित्य साधना के विरुद्ध लगा। शहरी लोगों के बारे में वह कहते थे कि "ये लोग स्वार्थ के कीड़े हैं।"

स्वास्थ्य के प्रति उदासीनता

इस साहित्य तपस्वी ने निरंतर अपने स्वास्थ्य की अनदेखी की। लंबे समय तक लगातार लिखने, रात-रात भर जागने तथा आर्थिक चिंता के कारण उनकी सेहत लगातार गिरती गई। जीवन के आखिरी दिनों में कालजयी उपन्यास "गोदान" लिखते समय वह शारीरिक रूप से बिल्कुल ही दुर्बल हो चुके थे परंतु उनकी कलम ने हार नहीं मानी।



नवाब राय नाम के पीछे का जुनून

अपनी साहित्य साधना के प्रथम दौर में प्रेमचंद नवाब राय के नाम से साहित्य सृजन करते थे। इस नाम से उनकी 'सोजे-वतन' नामक पुस्तक अंग्रेज सरकार द्वारा जपत करने तथा इसको राजद्रोह मानकर इनको अंग्रेज अधिकारी द्वारा तलब कर इनको सख्त चेतावनी दी गई। प्रेमचंद ने हार मानने की बजाय अपना नाम बदलकर और भी आक्रामक रूप से लिखना शुरू करते हुए अदम्य साहस का परिचय दिया।

तंबाकू से प्रेमचंद का अटूट रिश्ता

इनको तंबाकू पीने का गहरा चशका था। लेखन कार्य करते समय वे अक्सर हुक्का या सिगरेट का सहारा लेते थे। उनकी रचनात्मकता और तंबाकू के धुएं में एक गहरा संबंध था। उनके कई लेखक मित्रों ने उल्लेख किया है कि वे अपनी कहानियों के ताने-बाने को सुलझाते समय कई-कई घंटे हुक्के की नली अपने हाथ में लिये रहते थे। मानो यह तंबाकू उनके सृजनशीलता का एक आवश्यक हिस्सा थी।

आखिरी अधूरा उपन्यास- मंगलसूत्र

मुंशी प्रेमचंद अपने आप को कलम का मजदूर मानते थे। वे सदैव कहते थे कि एक मजदूर, मजदूरी किए बिना खाएगा क्या?

अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने मंगलसूत्र उपन्यास लिखना आरंभ किया। इस उपन्यास में वह एक आदर्शवादी चरित्र को स्थापित करना चाहते थे जो पथ के कठिन मोड़ों पर भी हार न मानकर जीवन मूल्यों को स्थापित कर सके। इस अधूरे उपन्यास को इनकी मृत्यु उपरांत उनके पुत्र अमृतराय ने पूरा किया। यह उपन्यास आज भी प्रेमचंद के अधूरे सपनों का जीवंत प्रतीक बना हुआ है।

आजीविका और साहित्य का द्वंद

मुंशी प्रेमचंद इस बात को बहुत अच्छी तरह जानते थे कि साहित्य से घर नहीं चल सकता। कई बार अपने मित्रों से चर्चा करते समय वह कहते थे कि यदि मेरे पास इतनी आय होती कि मेरा परिवार आराम से गुजर-बसर कर सके तो मैं कभी भी किसी पत्रिका का संपादन नहीं करता। बस बैठकर केवल और केवल कहानियां ही लिखता रहता। वे अक्सर कहते थे दबाव में लेखन से साहित्य की आत्मा मर जाती है।

और अंत में

विश्व में हिंदी-उर्दू के प्रख्यात कथाकार, उपन्यास सम्राट, कलम के सिपाही, लेखनी के मजदूर आदि अनेक उपमाओं से इस महान साहित्य-साधना के पथिक को अलंकृत किया जाता है। जीवन के अंतिम दिनों में अस्थमा की बीमारी से संघर्ष करते हुए, अपना विपुल साहित्य हिंदी मां के चरणों में समर्पित कर 8 अक्टूबर 1936 को वाराणसी में, यह पथिक गहरी निद्रा में लीन हो गया। आज भी प्रेमचंद का सृजन संसार विश्व के अरबों लोगों को यथार्थवाद का आइना दिखा रहा है। प्रेमचंद के विचार सदा साहित्य जगत के मनीषियों का मार्गदर्शन करते रहेंगे।

जब तक सूर्य चंद्र रहेंगे तेरा असर रहेगा,
लेखन साधना का जब तक समर रहेगा,
जग करता रहे नमन अटल सिपाही को,
हिंदी पटल पर प्रेमचंद सदा अमर रहेगा।

लघुकथा नौकर - नौकरानी अशोक आनन

ऑफिस से लौटते ही....., नीतिन ने तुनकते हुए विपिन बाबू से कहा, 'पा ! आपसे इतना भी नहीं बना कि आप स्कूल से गौतम को ले आते.....! मालूम है आज आपके न जाने के कारण मुझे प्रिंसिपल की कितनी डाँट सहनी पड़ी.....! और आप हैं कि सारे दिन टी.वी., मोबाइल में ही खोये रहते हो।'

'बेटा ! घुटनों में दर्द बढ़ जाने के कारण मैं स्कूल नहीं जा सका।' उन्होंने सफ़ाई देते हुए नीतिन से कहा।

'आपको तो रोज़ ही कुछ न कुछ होता रहता है। आपसे एक काम भी ढंग से नहीं होता। कल ही आप चार पैसों के लालच में बासी सब्जी उठाकर ले आये थे।' और नीतिन उन्हें उलाहना देते हुए अपने कमरे में चला गया। अफ़सोस ! उसने विपिन बाबू की सेहत का हाल जानना भी उचित नहीं समझा।

उन्हें अभी ज़रा झपकी आयी ही थी कि निशा के कमरे से आते हुए शोर ने उनकी निद्रा भंग कर दी। निशा कमलादेवी को डाँटती हुई कह रही थी, 'माँ जी ! आपसे घर के चार बर्तन भी ढंग से साफ़ नहीं होते, न ढंग से कपड़ों की धुलाई होती है और न झाड़ू-पोछा ही लगता है। आप दिन भर पड़ोस की महिलाओं के साथ गप्पें हाँकती रहती हो। सुबह गौतम का लंच भी आपसे तैयार नहीं हुआ। अच्छा होता....आप लोगों को गाँव से यहाँ लाने की बजाय हम कोई नौकर - नौकरानी ही रख लेते।'

'नौकर - नौकरानी' शब्द कान में पड़ते ही विपिन बाबू ने तय कर लिया कि वे इस घर में अब एक दिन भी नहीं रुकेंगे। और वे बेचैनी से सुबह का इंतज़ार करने लगे। रात में उनकी ज़रा भी आँखें न लगीं।

सुबह..... नीतिन और निशा के ऑफिस जाते ही उन्होंने उदयपुर की ट्रेन पकड़ी और वो फिर वृद्धाश्रम आ गये। उन्होंने एक बार भी पीछे मुड़कर देखना उचित नहीं समझा।

वे यहाँ आकर बहुत अपनत्व और सुकून महसूस कर रहे थे मानों वे परायों से फिर अपनों के बीच आ गये हों।





दिनकर की कविता में युगबोध

हिन्दी-कविता में दिनकर ऐसे कवि रहे जो अपने अन्य समकालीनों की तुलना में सबसे अधिक आलोचना के केन्द्र में रहे, जब तब नहीं-निरन्तर। कभी दिग्भ्रमित कवि कहे गये तो कभी दिशाहीन। वामपंथी आलोचना ने तो उन्हें विचारधारा विहीन कवि के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। केवल उत्तर प्रदेश के हिन्दी आलोचकों ने ही नहीं, उनके गृह-प्रदेश बिहार के हिन्दी-आलोचकों ने भी उनका साथ दिया।

ठीक इसके विपरीत उन्हें 'युगचारण' (डॉ. सावित्री सिन्हा) की उपाधि मिली। डॉ. पन्ना ने उन्हें युगचेतना के सबसे बड़े कवि के रूप में स्थापित किया। दिनकर के समकालीन मित्र आलोचक लक्ष्मी नारायण सुधांशु ने उन्हें 'आग के कवि' के रूप में पहचाना तो रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'मिट्टी के कवि'-रूप में। डॉ. अरविन्द नारायण जी ने पौरुष और ओज का कवि कहकर दिनकर को सम्मानित किया। राष्ट्रकवि और जनकवि तो वे कहे ही गये। कामेश्वर जी, जनेश्वर जी, रणजीत जी और इन जैसे अन्य तमाम आलोचकों के दिनकर विषयक निष्कर्षों को अस्वीकार करते हुए सामान्य पाठकों ने दिनकर को इतना अधिक पढ़ा और सराहा कि वे विरोधी आलोचनाएँ स्वतः धराशायी हो गयीं। मुझे नहीं मालूम कि दिनकर से अधिक हिन्दी में अन्य कौन कवि पढ़ा और सराहा गया। ज्यों. पाल-सार्त्र को अगर प्रमाण माने तो दिनकर इस दृष्टि से अपने समय के बहुत बड़े कवि रहे।

उपरिविवेचित इन आलोचकों से अलग रहते हुए अगर हम दिनकर के एतद् विषयक विचारों का विश्लेषण करें तो कदाचित् हम सच्चाई के अधिक निकट होंगे। उन्होंने चक्रवाल की भूमिका में लिखा है- "कवि होने की सामर्थ्य मुझमें शायद नहीं थी। यह क्षमता मुझमें भारतवर्ष का ध्यान करने से जागृत हुई। यह शक्ति मुझमें भारतीय जनता को आत्मसात करने से स्फुरित हुई। मैं तो वायु और वहिन से बना हुआ यंत्र मात्र था। फूँक उसमें काल ने मारी। झंकार भी उसमें काल ने उठाई है।" दिनकर को साक्ष्य

माने तो उनकी राष्ट्रीय कविता दबाव का प्रतिफल है। उनकी आत्मा तो 'रसवन्ती' और 'उर्वशी' की कविताओं में ही बसती है। वे स्वयं लिखते हैं- "राष्ट्रीयता मेरे भीतर से नहीं जन्मी है, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया है (चक्रवाल की भूमिका)। काव्य युग की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वे फिर लिखते हैं- "हर युग नया जल लेकर आता है और हर युग जब जाने लगता है तो उसके लाये हुए जल से आगामी युग की प्यास नहीं बुझ पाती है। प्रत्येक युग को अपना कुँआ आप खोदना पड़ता है। 'फूँक काल ने मारी', 'झंकार भी काल ने उठाई', 'राष्ट्रीय कविता समय के दबाव का प्रतिफल है', 'राष्ट्रीयता ने बाहर से मुझे आक्रान्त किया है', 'हर युग नया जल लेकर आता है', 'जल के लिए कुँआ स्वयं खोदना पड़ता है', 'कोई भी पुराना युग आने वाले युग की प्यास नहीं बुझा सकता' आदि आदि कवि के निष्कर्ष क्या यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं कि उनकी कविताओं में प्रमुखता उनके युग की रही है? इसीलिए डॉ. सावित्री सिन्हा ने उन्हें युगचारण कहा है और डॉ. पन्ना ने युगचेतना का कवि। डॉ. पन्ना के प्रबंध पर टिप्पणी लिखते हुए डॉ. नामवर सिंह ने दिनकर के युगबोध को रेखांकित किया है और डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने दिनकर को अपने समय के बोध का सबसे

बड़ा कवि माना है। 'युगचारण' और 'युगचेतना' की अवधारणा से -'युगबोध' की अवधारणा में क्या अन्तर है? 'युगचारण' तो स्पष्टतः युग की विरुद्धवाली गाने वाले कवियों की ओर संकेत करता है। इसमें प्रशस्तिगान की प्रमुखता है। यह 'एप्रीशियेशन' है, 'क्रिटिकल एप्रीशियेशन'। वहीं युगचेतना में चयन की प्रधानता होती है। डॉ. पन्ना के शब्दों में समाज संस्कृति, राजनीति, दर्शन आदि का स्वरूप जिस युग में जैसा रहता है ठीक उसी रूप में ग्रहण कर अभिव्यक्त कर देना 'युगभावना' कही जाती है। परन्तु उन्हीं युगीन भावनाओं में से कवि जब कुछ का चयन करता है, जिसकी उपादेयता और उद्देश्य मूलकता असंदिग्ध होती है तो वह 'युग की चेतना' की संज्ञा प्राप्त कर लेती है। 'सचेतनता' और 'चयन' को डॉ. नामवर सिंह भी 'युगचेतना' की अर्न्तमूत विशेषता मानते हैं। परन्तु



‘युगबोध’ इन दोनों से भी आगे की अवधारणा है जिसमें युग के साथ ‘संलिसता’, ‘चयनिता’, ‘आलोचनात्मकता’, ‘ग्रहणीयता’, और ‘अभिव्यंजना’ पाँचों विशेषताएँ एक साथ होती हैं। ‘लेविस’ ने अपनी विश्व प्रसिद्ध पत्रिका ‘स्कूटिनी’ के लगातार तीन अंकों में इस अवधारणा की वृहद और गंभीर मीमांसा की है। वस्तुतः बोध की पीठिका में आलोचनात्मकता और स्वरूपीकरण में ज्ञान-ग्रहणीयता की अहम् भूमिका होती है। युगीन परिस्थितियों में संलिस होना, अपनी ग्रहणीयता के लिए इनमें से कुछ का चयन करना, फिर आलोचना के द्वारा उसे जाँचना-परखना और इस प्रणाली से उपलब्ध ज्ञान को ग्रहण कर सृजन रूप में अभिव्यंजित कर देना ‘युगबोध’ कहा जाता है। इस सृजन-प्रक्रिया का आदर्श अनुपालन हुआ है दिनकर की कविताओं में। दिनकर की काव्य-यात्रा प्रारंभ होती है 1924-25 ई0 से यानी 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक से 7 वें दशक तक दिनकर का रचना संसार फैला हुआ है। और, हम सभी जानते हैं कि यह अवधि न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण संसार के लिए अविस्मरणीय रही है। इतिहास का कोई भी कालखंड इतना घटना-संकुल नहीं रहा है।

इस कालखंड ने दो-दो विश्वयुद्धों की विभीषिकाएँ देखीं। उन्हें झेला और उनसे उबरने का साहस दिखाया। भारत सहित दुनियाँ के तमाम देशों ने अपनी राजनैतिक स्वाधीनता के लिए महा संग्राम इसी शताब्दी में लड़ा और विजयी हुए। यह कालखंड औपनिवेशिक शासन के अंत हेतु सदा याद किया जायेगा। इस कालखंड की सबसे बड़ी उपलब्धि रही विज्ञान और तकनीकी ज्ञान का उदय और विकास। मानव-सभ्यता के प्रांगण में फैले इस आलोक में इस युग के मनुष्य ने रूढ़ियों, कुप्रथाओं, जड़ताओं और कुपरंपराओं के विरुद्ध भी महासंग्राम छेड़ा। आशय यह कि विश्व और देश का यही घटना-संकुल काल दिनकर की कविता-रचना या यों कहें कि उनके सृजन की पृष्ठभूमि रहा है।

दिनकर की कविताओं में अभिव्यक्त उनका सामाजिक और सांस्कृतिक युगबोध, राजनीतिक और आर्थिक युगबोध दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक युगबोध आदि की बृहद् चर्चा तो एक लेख में कर पाना संभव नहीं है। हां, युगबोध की अभिव्यंजना में दिनकर ने जिन कुछ विवादों को जन्म दिया है, उनका कवि जहां आलोचना की परिधि में आया है उन्हीं में से कुछ का उल्लेख करते हुए मैं अपनी बात को आगे बढ़ाऊँगा।

‘रेणुका’ का प्रकाशन वर्ष 1935 है। 1945-46 ई0 तक दिनकर का कवि भावुकता के दौर से निकलकर वैचारिकता के दौर में प्रवेश पा चुका था। ‘कुरुक्षेत्र’ का प्रकाशन स्वाधीनता के पहले ही हो चुका था। ‘सामधेनी’ भी आ गई थी। ‘द्वन्द्वगीत’ और ‘मिट्टी की ओर’ का प्रकाशन भी हो चुका था। स्वाधीनता के पूर्व के इसी दिनकर का विकास हुआ है स्वाधीनता के बाद।

दर्शन के स्तर पर स्वाधीनता के संघर्ष की विचारधारा वही नहीं रह जाती है जो स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद की होती है। भारतीय मुक्ति-संघर्ष का लक्ष्य था अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति पाना। इसकी सफलता के लिए उत्कट राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद की अंधी आवश्यकता थी। दिनकर ने इसी उत्कट राष्ट्रीयता को अपनी कविता में उकेरा है। ‘द्वन्द्वगीत’ और ‘रसवन्ती’ को अगर अलग कर लें तो स्वाधीनता के पूर्व के दिनकर-काव्य का मूल स्वर यही उत्कट राष्ट्रवाद है। डॉ. सावित्री सिन्हा ने जहाँ दिनकर को युगचरण कहा है वहीं उनकी राष्ट्रीयता को अंधी राष्ट्रीयता और उनकी क्रांति चेतना को अंधी क्रांति चेतना कहकर उनकी तीखी आलोचना की है। किन्तु जिस किसी भी देश में लाला लाजपतराय के सिर पर डंडे बरसाये जा रहें हों, जालियाँ वाला बाग का नृशंस हत्याकांड हो रहा हो, भगत सिंह और उनके साथियों को फाँसी दी जा रही हो, उस देश का कवि अगर क्रांतिगीत या विप्लव-कविता लिखने की जगह राष्ट्रीयता के विमर्श में लगा हो तो इससे बड़ी शर्मनाक और वीभत्स घटना और क्या हो सकती है? फिर, उस कवि की बात? जो बापू की अर्चना भी अंगारों से करता हो वह अगर ‘हुँकार’ न भरे, ‘विपथगा’ न लिखे, समर साधना के लिए गांडीव और गदाधारी अर्जुन तथा भीम के लौट आने की बात न करे, चन्द्रगुप्त और अशोक को न टेरे, बमवाले नौजवानों का आह्वान न करे तो क्या आज के सर्जकों और आलोचकों की तरह ‘वैभव की दीवानी दिल्ली’ के विज्ञान-भवन के शीतताप नियंत्रित सभाकक्ष में केवल बहस और विमर्श करें? जिस युग की मूल आकांक्षा ही हो-

‘मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक”
उस युग का दिनकर ही लिख सकता है-
तुम एक अनल-कण हो केवल,
अनुकूल हवा पाकर लेकिन
छप्पर तक जा सकते उड़कर
ज्वाला प्रचण्ड फैला सकती
एक छोटी सी चिनगारी भी।

या फिर,

हटो व्योम से, गगन पंथ से
स्वर्ग लूटने हम आते हैं।
दूध-दूध ओ बत्स तुम्हारा
दूध खोजने हम जाते हैं।

कहना न होगा कि वही आग का कवि दिनकर स्वाधीनता के बाद इस अंध राष्ट्रवाद को छोड़ने की बात करते हैं। विश्व याराना में वे इसे बाधक मानते हैं। स्वाधीनता पूर्व लिखी गई उनकी कविताओं में सर्वत्र गर्जन-

-तर्जन से भरा हुआ 'हुँकार' है, विद्रोही और विप्लवी स्वर है किन्तु स्वाधीनता के बाद यही विप्लवी स्वर पंचशील, सह अस्तित्व, निःशस्त्रीकरण, और अन्तर्राष्ट्रीयता के विश्व मानवतावाद की ओर उन्मुख हो जाते हैं। 'नील कुसुम' में तो कवि ने औपचारिक रूप से राष्ट्रदेवता का विसर्जन ही कर दिया है। राष्ट्रवाद के दूराग्रह पर प्रहार करते हुए 'कोयला और कवित्व' में दिनकर ने लिखा-

“टिकने देती भैंस नहीं
बाहर वाली भैंसों को
अपने खूँटे से ढकेल कर
बाहर कर देती है।”

‘चक्रवाल की भूमिका’ में दिनकर जी ने स्वयं संकेत किया है कि राष्ट्रीयता उनकी अर्न्तआत्मा का स्वर नहीं है। लक्ष्मी नारायण सुधांशु की तरह मैं भी दिनकर की इस निष्पत्ति को स्वीकार नहीं कर सकता। दिनकर जी ने राष्ट्रीयता से बचने के कई प्रयास किये जो नितान्त बौद्धिक हैं। इसके लिए दिनकर जी ने न केवल चिंतन प्रस्तुत किया बल्कि कई निबन्ध लिखे, व्याख्यान दिये और कई कविताएँ भी लिखीं। परन्तु चीनी आक्रमण के समय उनके कवि-अस्तित्व पर पुनः वही राष्ट्रवाद अपनी सम्पूर्ण उत्कटता के साथ प्रकट हुआ। दर्शन, कला, साहित्य विषयक उनकी कई मान्यताएँ खंडित हुई जिन्हें उन्होंने सावधानी पूर्वक गढ़ा था। हमें याद है कि मार्क्सवादी खेमे से ‘परशुराम की प्रतीक्षा’ पर जबरदस्त आक्रमण हुआ था। यह आक्रमण वस्तुतः राष्ट्रीयता के शक्तिशाली पुनर्विस्फोट पर अन्तर्राष्ट्रीयता का ही आक्रमण था। आशय यह कि दिनकर की कविताओं में चयन की प्रक्रिया के साथ-साथ आलोचना की प्रवृत्ति भी रेखांकित करने योग्य है जो युगबोध के प्राणतत्त्व हैं।

विचारधारा के प्रश्न को लेकर भी दिनकर के सर्जक को आलोचना के कठघरे में खड़ा होना पड़ा है। डॉ. जनेश्वर वर्मा ने उन्हें दिशाहीन कवि की संज्ञा दी है। वामपंथी अधिसंख्य आलोचकों ने दिनकर को वहीं तक स्वीकार किया है जहाँ उनकी कविताओं में कुछ पंक्तियाँ समता और समानता से संबंधित मिल गई हैं या फिर विषमताओं के विरोध में। लेकिन वे आलोचक भूल गये हैं कि रचनाकार की अगर कोई अपनी विचारधारा होती है तो युग और समय की विराधाराएँ भी होती हैं। स्वाधीनता से पहले की विचारधारा राष्ट्रीयता थी, उत्कट राष्ट्रीयता और स्वाधीन भारत की विचारधारा पंचशील, सह अस्तित्व, निःशस्त्रीकरण तटस्थता और विश्व-बंधुत्व। दिनकर ने विचारधारा को उस अर्थ-संदर्भ में स्वीकार ही नहीं किया है जैसा मार्क्सवादी मानकर चलते हैं। समय बदला, सोच में परिवर्तन हुआ, कर्म के लक्ष्य बदले। युग क्रमशः नवीनता की ओर बढ़ता रहा और युगबोध की कविता की दिशा भी बदलती रही। दिनकर इस युग के इतने अधिक प्रतिभा

सम्पन्न सर्जक रहे एक सच्चे युगवाहक सर्जक की तरह। निरन्तर बदले हुए युग और उसकी बदली हुई स्थितियों की वे आलोचना करते रहे और गृहीत ज्ञान-सम्पदा का वाणी-विधान करते रहे। कदाचित् इसीलिए दिनकर ने अपने को विचारक कहाना अधिक पसन्द किया है। वे विचारक शब्द की व्याख्या भी करते हैं-“विचारक के खेत में एक ही क्यारी नहीं होती जिसमें एक ही तरह के पौधे उगते हों। वह बराबर अनेक सत्यों की क्यारियाँ तैयार करता है। बिना आत्मखंडन किये सत्य का सेवन नहीं चल सकता। (साहित्य मुखी)” दिनकर के संबंध में विचारधारा का अर्थ-संदर्भ आसानी से समझा जा सकता है। यह देश वस्तुतः परंपरा का नहीं, परंपराओं का देश है। यहाँ न पहली परंपरा होती है और दूसरी। यहाँ तो परंपराएँ होती हैं। फलतः विभिन्न विचारधाराएँ भी होती हैं। इनके सह-अस्तित्व से ही महान भारतीय संस्कृति विकसित हुई है, दिनकर की दृष्टि में जिसके मुख्यतः चार अध्याय हैं। जिस किसी भी विचारक या कोई विचारधारा ने दिनकर को प्रभावित किया दिनकर ने उसकी प्रशंसा की, कविता और गद्य दोनों में ही वाणी विधान किया किन्तु कालपट पर जब वही विचारधारा मनुष्य या देश विरोधी प्रमाणित हुई तो दिनकर ने उसकी आलोचना भी की, यहाँ तक कि भर्त्सना भी। ‘मोह’ और ‘मोह भंग’ दोनों ही स्थितियाँ यहाँ साफ-साफ देखी जा सकती हैं। बापू पर ढेर सारी कविताएँ लिखने वाले दिनकर ने ही गांधी नीति की असफलता देखकर ‘परशुराम की प्रतीक्षा’ में लिखा-

“गांधी की रक्षा करने को गांधी से भागो।”

जिन जवाहर लाल नेहरू को दिनकर ने ‘अंधियारे में आशा का दीपक’ कहा था; जनता का ज्योर्तिनयन कह कर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी आजाद भारत में जब उनका कल्पना जीवी आदर्श और उनकी नीतियों को खंडित होते देखा तो उन्होंने नेहरूनीति की अव्यावहारिकता की जमकर आलोचना की। इसी तरह ‘स्वप्नों के द्रष्टा जयप्रकाश’ को दिनकर ने कभी “भारत का भाग्य-विधाता” तथा “दलित देश का त्राता” कह कर उनकी अभ्यर्थना की थी; 1948 में जब कांग्रेस से अलग होकर उन्होंने समाजवादी दल का गठन किया था दिनकर ने जयप्रकाश जी की आलोचना की थी। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में जब कम्युनिस्टों ने भारत का साथ नहीं दिया था तो दिनकर ने उन्हें भी नहीं बक्सा। लिखा-

“एक देश है जहाँ विषमता से अच्छी हो रही गुलामी
जहाँ मनुष्य पहले स्वतंत्रता से हो रहा विश्व का कामी”
“जहाँ मास्को के रणवीरों के गुण गाये जाते हैं
दिल्ली के रूधिराक्त वीर को देख लोग सकुचाते हैं।”

निष्कर्ष यह कि दिनकर की विचारधारा वस्तुतः कोई राजनीतिक विचारधारा नहीं थी। युग की

विचाराधारा का बोध उनमें हमेशा सजग रहा। युग की अनुभूतियाँ उनकी अनुभूति में ढली और तब रची गई उनकी कविताएँ।

“परशुराम की प्रतीक्षा” में एक सैनिक के मुँह से देश की अव्यावहारिक नीतियों और उसके निर्धारकों पर तीखी आलोचना प्रस्तुत की गई है। आलोचना शिविर से इसके लिए दिनकर पर कड़ा प्रहार हुआ है। कहा गया है कि सेना का अनुशासन उसकी कर्तव्य-निष्ठा आदि को कवि ने भंग किया है। बिना लड़े ही हार जाने वाला चीन-भारत युद्ध वस्तुतः देश की अव्यावहारिक नीतियों का ही फल रहा है। शान्तिदूत कहला कर विश्व नेतृत्व का सपना देखनी निरी आदर्श कल्पना के अतिरिक्त और क्या है? सैनिक ने इसी कल्पनाश्रित आदर्शवादिता पर प्रहार किया है। आलोचक यहाँ यह भूल गये हैं कि भारत एक जनतांत्रिक देश है। एक सैनिक केवल इसलिए सैनिक नहीं है कि वह सीमा की रक्षा में चंद चाँदी के सिक्कों के लिए अपने आप प्राण न्योछावर करता रहे, भेड़-बकरो की तरह हलाल होता रहे और मूक रहकर सारे जन-विरोधी हथकंडों को चुपचाप सहता रहे। वह सैनिक के साथ साथ एक जनतांत्रिक देश का नागरिक होता है। इसीलिए उसे भी जन नेताओं की भ्रष्ट और जनविरोधी नीतियों की खुली आलोचना करने का हक है। जिस जाति ने इस हक पर प्रतिबंध लगाया है उस देश का लगभग वही हस्र होता आया है जो चीनी आक्रमण के समय हमारे देश का हुआ था। आहत राष्ट्र का खून इस अपमान से खौल उठा था। दिनकर के कवि ने इस बार भी इस दायित्व को संभाला और ‘परशुराम की प्रतीक्षा’ में पुनः प्रमाणित किया कि वे वास्तविक अर्थों में युगबोध के ही प्रतिनिधि कवि हैं।

दिनकर राजनीति के पास रहते हुए भी सरकारी ‘माइक्रोफोन’ नहीं बने। ‘हुंकार’ की रचना का खतरा उन्होंने तब उठाया जब वे सरकारी कर्मचारी थे। उन्होंने एक तरह से अपनी आजीविका को भी दाँव पर लगा दिया था। ठीक उसी प्रकार संसद सदस्य रहते हुए भी उन्होंने “परशुराम की प्रतीक्षा” लिखी। स्वाधीन भारत की राजनीति की अव्यावहारिक नीतियों की उन्होंने बखिया उधेर कर रख दी, उसके रेशे रेशे खोल डाले। यानी युगधर्म को दिनकर ने हमेशा आपद धर्म की तरह बरता। इसीलिए राजनीति उसे निगल नहीं पायी। अपने मित्र बेनीपुरी की तरह वे राजनीति के शिकार नहीं बने। सांसद रहते हुए भी उन्होंने तमाम कालजयी रचनाओं से साहित्य का भंडार भरा।

इस प्रसंग की अन्तिम बात दिनकर की अतीत परिकल्पना के संबंध में। दिनकर की कविताओं में वर्णित अतीत के प्रतिराग का संबंध न तो अतीत के खंडहर से है और न छायावादी प्रभावों से; न पुनरुत्थानवाद से और न पलायनवाद से। युगबोध के कवि का संबंध केवल अपने वर्तमान से रहता है। उसका सृजन नितान्त समकालीन

होता है। दिनकर ने अतीत की घटनाओं और प्रतीकों के सहारे वर्तमान के उत्थान की कल्पना की है। ‘कोयला और कवित्व’ में दिनकर ने अपने अतीत-सरोकार का खुलासा करते हुए लिखा है-

“जब भी अतीत में जाता हूँ, मुर्दों को नहीं जिलाता हूँ।
पीछे हटकर फेंकता बाण, जिससे कंपित हो वर्तमान।
खँडहर या भग्नाशेष पर कहीं न बचा जो स्नेह शेष।
तो जा उसको ले आता हूँ, निज युग का दिया जलाता हूँ।”

दिनकर की यह आकांक्षा रही है कि “वर्तमान की चित्रपटी पर भूतकाल संभाव्य बने। अंत में कहना चाहूंगा कि दिनकर के विशाल साहित्य-भंडार में जीवन-जगत से संबंधित तमाम स्वर मुखरित हुए हैं किन्तु उनका प्रमुख रचनात्मक सरोकार ‘युगबोध’ ही है।

रामस्वरूप मूंदड़ा

बूंदी (राज)



गजल

हो सके तो साथ देना इस सपन के ही लिए
जी रहे है सिर्फ हम भी अब अमन के ही लिए

एक दिन तो आयेगा जब आँख में आँसू न होंगे
रुक गए है देखने ऐसे नयन के ही लिए

आदमी को तोड़कर हाथ कुछ आता नहीं है
कुछ मधुरता दीजिए अपने वचन के ही लिए

चाह तो है चाह उसकी कद्र करना सीखिए
कौन चाहेगा मरण दो गज कफन के ही लिए

हर किसी को दर्द अपना यहाँ पर लगता बड़ा
प्यार करके देखिए सच्ची तपन के ही लिए

भीड़ में होते खड़े हम ये जरूरी तो नहीं
हाथ हिलते हो जहाँ अच्छे चयन के ही लिए

आप रोके और हम रुक जाएं यह संभव नहीं
हम तो निकले है यहाँ लम्बे गमन के ही लिए



हमें थूकने की आज़ादी चाहिए

आज़ादी का मतलब क्या है? यही कि हम अपनी मर्ज़ी से जी सकें, अपनी पसंद का खाना खा सकें, अपनी राय रख सकें, और... हाँ, जहाँ चाहें, वहाँ थूक सकें! पर अफसोस, इस देश में अब थूकने की आज़ादी भी खतरे में है। आए दिन दीवारों पर बड़े-बड़े लाल रंग में लिखा मिलता है - “इधर थूकना मना है”, “उधर थूकना मना है”। मानो थूकना कोई अपराध हो गया हो!

भाई, ये भी तो सोचिए कि थूकना भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। किसी को गुस्सा आ गया तो “थू” करके क्रोध प्रकट करना, पान-गुटखे का शौक पूरा किया तो “फूँ” करके दीवार सजाई, और अगर किसी को नज़र लग गई तो “थू-थू” करके उसका निवारण किया। यह एक ऐसा बहुउपयोगी क्रिया-कलाप है जिसे रोकना, भारतीय सभ्यता पर कुठाराघात जैसा है।

आजकल नगर निगम वाले बड़े उत्साह में हैं। हर चौराहे, हर फुटपाथ पर बोर्ड लगा दिया है — “थूकने पर जुर्माना”। कुछ जगह तो कैमरे भी लगा दिए गए हैं। कल्पना कीजिए, कोई बेचारा अपने पान का रस निकालने की कोशिश कर रहा हो और कैमरे में कैद हो जाए! उसके घरवाले बाद में फुटेज देखकर कहें — “अरे, यही है तुम्हारा ऑफिस का ओवरटाइम?”

थूकने के विरोधियों का कहना है कि इससे गंदगी फैलती है। अरे भाई, गंदगी तो वैसे भी फैल रही है — प्लास्टिक, धुआँ, शोर, राजनीतिपर उस पर कोई जुर्माना नहीं। दीवार पर पान का छींटा तो कम से कम रंग-बिरंगी कलाकृति जैसा दिखता है। कुछ पुरानी इमारतें तो पान के छींटों से इतनी सज गई हैं कि अगर उन्हें “थूक महल” नाम दे दिया जाए, तो टूरिस्ट गाइड में जगह मिल सकती है।

और सोचिए, थूकना स्वास्थ्य के लिए भी जरूरी है। डॉक्टर कहते हैं, शरीर के ज़हर बाहर निकालो। अब यह ज़हर अगर ज़मीन पर न निकले, तो कहाँ जाएगा? और फिर, थूक से सड़क पर एक अलग किस्म की चमक आ जाती है, जिसे बारिश आने पर ही धोया जा सकता है। यह प्राकृतिक सफाई व्यवस्था है, जिसे हम “थूक-चक्र” कह सकते हैं। हमारा विनम्र प्रस्ताव है कि थूकने पर रोक की जगह, इसे व्यवस्थित किया जाए। जैसे पार्क में “जॉगिंग ट्रैक” होते हैं, वैसे ही “थूक ट्रैक” बनाए जाएँ। हर मोहल्ले में “थूकने का कोना” हो, जहाँ लोग बैठकर आराम से गप्पें मार सकें और थूक सकें। इससे न केवल थूक संस्कृति बचेगी, बल्कि सामाजिक मेल-जोल भी बढ़ेगा। अंत में, हम बस इतना कहना चाहेंगे कि जिस देश में लोग अपने हक के लिए आंदोलन करते हैं, वहाँ थूकने का हक भी कम जरूरी नहीं है। अगली बार अगर कोई आपको कहे कि “इधर मत थूको”, तो गर्व से जवाब दीजिए — “जनाब, यह मेरी आज़ादी है!”

वरना, आने वाले समय में बच्चों को इतिहास की किताब में पढ़ना पड़ेगा — “कभी भारत में लोग खुले में थूक सकते थे” — और वे हंसेंगे। जैसे आज हमारे बच्चे “कभी बिना इंटरनेट के लोग जीते थे” पढ़कर हंसते हैं।



भारत का उत्तरापथ

भारत का उत्तरापथ प्राचीनतम राजमार्ग है पूरे विश्व में। ऐसा माना जाता है कि जैसे ही मानव समाज ने पहिएवाली गाड़ी का आविष्कार किया और उसके दम पर नदियों द्वारा यातायात को छोड़कर भूमि पर आवागमन का आरंभ हुआ तभी से संभवतः यह मुख्यपथ विकसित हुआ। उपलब्ध साक्ष्यों से सिद्ध हो चुका है कि संस्कृति के सामाजिक विकास में यह पांच हजार वर्षों से विश्व का सबसे अधिक व्यस्त और लाभकारी व्यापारिक मार्ग रहा है जिसपर चलकर अनेकों संस्कृतियाँ भारत में अपना भाग्य बनाने आईं, पनपीं और अस्त हुईं। रडयार्ड किपलिंग, जो जन्म से भारतीय थे और अपने जीवन का एक लम्बा काल यहीं बिताकर गए, लिखते हैं कि यदि प्राचीन विश्व का इतिहास लिखना है तो ग्रैंड ट्रंक रोड के आस पास खुदाई करो तो परत दर परत सारे साक्ष्य निकलते आएंगे जो स्वयं अपना इतिहास बखानेंगे। वह आगे कहते हैं कि इस सड़क पर इतनी संस्कृतियों का मेला रेला अनवरत और अबाध्य रूप से चलता आया है कि हम इसे संस्कृतियों की नदी कह सकते हैं और मैं इसमें तिरता हुआ एक लकड़ी का टुकड़ा मात्र हूँ।

इसका विस्तार पूर्व में ताम्रलिप्ति --(तामलुक) - पश्चिमी बंगाल से लगाकर पश्चिम में बाहलीक --- बल्लभ तक था। बहुत से पुरातात्विक साक्ष्य इस की पुष्टि करते हैं कि अत्यंत प्राचीन काल में उत्तरापथ अफगानिस्तान से भी आगे खुरासान से जाकर जुड़ जाता था। खुरासान पथ आगे अन्य पश्चिमी और दक्षिणी-पश्चिमी देशों को जोड़ता था। तुर्किस्तान तक। यह वह महत्वपूर्ण मार्ग है जो गंगा नदी के सम्पूर्ण क्षेत्र के समानांतर भारत को मध्य एशिया से जोड़ता है। वैदिक काल के लिखित साक्ष्य मौजूद हैं कि उत्तरापथ अश्वारोहण व व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। घोड़ों के व्यापारी काशी, कौशल, पाटलिपुत्र, (मगध), होते हुए प्रत्युतिशा यानि आसाम तक जाते थे। म्यांमार यानि ब्रह्मदेश की सेनाओं में अरबी घोड़े होते थे। चियांग किंग एक चीनी यात्री, सन १२७ ईसा पूर्व में भारत भ्रमण के लिए आया था। उसने संभवतः रेशम पथ पर यात्रा की थी जो बाहलीक के पास उत्तरापथ से मिल जाता है। गांधार में उसने देखा कि बाजारों में

चीन के बांस और रेशम का सामान खुला बिक रहा था। उसने पूछ ताछ की तो पता चला कि यह सामान बंगाल के रास्ते गांधार तक उत्तरापथ के द्वारा लाया गया था। अतः इस राजमार्ग की उपस्थिति कई हजार वर्ष पुरानी है। पुराणों में वर्णित उत्तर भारत के सोलह जनपद इस सड़क के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े हुए थे। यह जनपद गंगा नदी के समानांतर पूरे उत्तर भारत में फैले हुए थे। त्रेता युग में और महाभारत काल में इनमे पारस्परिक सामाजिक और राजनैतिक संबंधों का विस्तृत विवरण हमें रामायण और महाभारत महाकाव्यों में मिलता है। पूरब दिशा से पश्चिम तक इन जनपदों के नाम इस प्रकार हैं।

१. अंग ---- आधुनिक बिहार का पूर्वी भाग
२. मगध ---- पाटलिपुत्र अर्थात् पटना के आस पास का क्षेत्र
३. कौशल ---- मिथिला और अयोध्या के आस पास नेपाल तक
- ४। काशी ---- आधुनिक वाराणसी
५. वज्जि ---- यह मगध और काशी के दक्षिण में स्थित क्षेत्र था जिसमे अनेक जनजातियों के समूह रहते थे।
६. मल्ल ---- गंगा नदी के दक्षिण का क्षेत्र। गोरखपुर और कुशीनगर का क्षेत्र।
७. मत्स्य ---- पूर्वी राजस्थान, जयपुर भरतपुर आदि।
८. चेदि ---- चेदि या चैत्य दो भागों में जाना जाता है। कुछ नेपाल में और कुछ बांदा के आस पास।
९. वत्स ---- आधुनिक काल में यह प्रयागराज का क्षेत्र माना जाता है।
१०. कुरु ---- कुरुक्षेत्र आज भी जीवित है प्राचीनकाल से इसकी पहचान दिल्ली और उसके आस पास के इलाके से मानी जाती है जिसकी राजधानी इंद्रप्रस्थ थी / है।
११. पांचाल ---- यमुना नदी के पूर्व का भाग पांचाल कहा जाता है।
१२. शूरसेन ---- यह भाग राजस्थान का है। उत्तरप्रदेश हरियाणा एवं ग्वालियर। इसकी राजधानी मथुरा थी जिसका राजा कंस था।
१३. अश्माका ---- इसे अस्साका भी कहा जाता है। यह दक्षिण की राजधानी और एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र

था। आजकल का तेलंगाना ,महाराष्ट्र , गोदावरी नदी के आस पास का भाग जो उत्तर में विंध्य पर्वत से मिल जाता था।

१४. अवन्ति ---- यह नर्मदा नदी का क्षेत्र था और बहुत समृद्ध था। आधुनिक काल में इंदौर माहिष्मती आदि।

१५. गांधार ---- आधुनिक काल में यह सिंधु नदी के पश्चिम का हिस्सा कहा जाता है। मूलस्थान पेशावर कंधार आदि इसके प्रमुख चिन्ह हैं।

१६. काम्बोज ---- काम्बोज में आते हैं तक्षशिला ,काश्मीर और हिमालय के काराकोरम चोटियों के गाँव गुरदासपुर ,पूँछ आदि।

त्रेता युग के इतिहास का यदि गूढ़ अध्ययन किया जाए तो हम देखते हैं कि उत्तर भारत दक्षिण के प्रांतों से भली भाँती जुड़ा हुआ था। कौशल प्रदेश से रामचंद्र जी की यात्रा का मार्ग श्रीलंका पर पूर्ण होता है। तो क्या यह मार्ग निरा जंगल था ? नहीं ऐसा कदापि नहीं हुआ। मार्ग में अनेक राज्य थे जिनका इतिहास लिपिबद्ध है और उत्खनन में मिले साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि यहां भी व्यापार प्रचुर मात्रा में उपस्थित था। राजगृह से प्रतिष्ठान तक दक्षिणापथ का उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में मिलता है।

अनुमानतः दक्षिणापथ भारत के विन्ध्यपर्वत से लगाकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक पसरा हुआ इलाका है। व्यापार मार्ग की बात करें तो एक सड़क श्रावस्ती से शुरू करके वाराणसी प्रयाग,चित्रकूट ,उज्जैन ,होती हुई प्रतिष्ठान (आज के पैठण शहर) तक जाती थी। प्रतिष्ठान से आगे सड़कें पश्चिम की ओर भारत के बंदरगाहों से जुड़ती थीं इनमें द्वारका ,भरूच और महाराष्ट्र में नाला सोपारा प्रमुख थे। इन व्यापारिक मार्गों के कारण दक्षिण में चोल ,चेर एवं धुर दक्षिण में तमिल पांड्यन साम्राज्य बहुत समृद्ध राज्य थे। उत्तरापथ से यह वाराणसी और अवन्तिका नगरी से जुड़ती थीं जिससे अश्वों का व्यापार होता था जो राज्यों की सैनिक क्षमता को बलशाली बनाता था। दक्षिणापथ के रास्ते श्रीलंका तक घोड़े पहुंचाए जाते थे। श्रीलंका की सेना में उच्च कोटि के अश्व थे। स्पष्ट है कि ईसा पूर्व १००० वर्षों से या उससे भी अधिक काल से भारतवर्ष एक सुदृढ़ यातायात व्यवस्था से जुड़ा हुआ था और एक जैसी संस्कृति व समाचार चारों कोनों में व्याप्त था। यही नहीं इसका विस्तार अनेक पड़ोसी क्षेत्रों को समाहित किये हुए था जो काल चक्र में शनैः शनैः अलग हो गए। भारत एशिया का व्यापारिक केंद्र था और उस काल के सभी देशों से सामुद्रिक व स्थल मार्गों से जुड़ा हुआ था। इन देशों में भारत की ही धर्म व्यवस्था ,जीवन दर्शन एवं दैनिक जीवन प्रणाली अधिक प्रचलित थी।

यद्यपि उत्तरापथ अधिक विकसित क्षेत्र था परन्तु प्राचीनता की दृष्टि से दक्षिणापथ अधिक पौराणिक है। दक्षिणापथ का प्रयोग रामायण काल में हुआ था जब राम चंद्र ने अयोध्या से वनगमन किया था। उनकी यात्रा का पूरा नक्शा रामायण में वर्णित है। जहां जहां वह गए

और ठहरे वह सभी स्थान व उनके स्थल मार्ग,रस्ते की नदियाँ व जंगल आदि आज भी उन्हीं स्थानों पर स्थित हैं और उनके नाम भी अमर हैं। इससे सिद्ध यह भी होता है कि त्रेता युग के राम लक्ष्मण व रावण से उनका युद्ध आदि काल्पनिक कहानियां न होकर एक पक्का इतिहास हैं भारत का। उत्तरापथ और दक्षिणापथ आपस में अनेक सुदृढ़ मार्गों से जुड़े हुए थे इसीलिये पूरे भारत का धर्म एक है और संस्कृत भाषा में लिखे ग्रन्थ व सूक्त सनातन धर्म का स्तम्भ हैं।

त्रेता युग में जैसे रामायण भारत दक्षिणापथ का भौगोलिक इतिहास बखानती है उसी प्रकार द्वापर युग में महाभारत ग्रन्थ हमें सम्पूर्ण उत्तरापथ और उसके महाजनपदों से अवगत करवाता है। महाभारत उत्तरापथ का इतिहास है। पांडवों के अज्ञातवास ,और वन गमन का अध्ययन भारत के उत्तर के भूगोल का पारायण है। इन ग्रंथों में वर्णित स्थान और नगर आज तक अपने मूल नामों से जाने जाते हैं। जिन स्थानों के नाम बदले गए हैं उनको पुनःस्थापित करना देश की सेवा होगी और उसकी प्राथमिकता देनी चाहिए।

उत्तरापथ का जीर्णोद्धार चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में हुआ। आस पास के अनेक जनपदों को जीत कर मगध का जनपद बहुत बलशाली हो गया था। महात्मा बुद्ध के जन्म के बाद से मगध राज्य बहुत प्रसिद्ध भी हो गया था। विश्व से अनेक यात्री बौद्ध धर्म के कारण भारत भ्रमण के लिए आने लगे थे। परन्तु मगध का राजा दूरदर्शी नहीं था। नंदवंश अपने चरमोत्कर्ष पर अभिमानी एवं निष्क्रिय हो चला था। ऐसे समय में एक महाविद्वान ब्राह्मण विष्णुगुप्त चाणक्य ,राजा द्वारा अपमानित हो कर मगध की सीमा से बाहर चला गया और उसने एक प्रतिभावान बालक को आदर्श राजा बनाने का व्रत लिया। यह ब्राह्मण था विष्णु गुप्त यानि कौटिल्य यानि चाणक्य। और उसका शिष्य बालक था चन्द्रगुप्त मौर्य। आचार्य चाणक्य पंजाब के उत्तर पश्चिम में स्थित ,तक्षशिला ,में ज्ञान दान करने लगे। तक्षशिला उस काल का विश्वविद्यालय था जहां सुदूर देशों से विद्वान छात्र ज्ञान लेने आते थे। भारत उस काल की एकमात्र ज्ञान शाळा था। चाणक्य बुद्धिमान और दूरदर्शी थे अतः उन्होंने भांप लिया था कि शक्ति संवर्धन के लिए उत्तरापथ एक रक्तवाहिनी धमनी बन सकता है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने आचार्य चाणक्य की प्रेरणा से अपने बल का विस्तार किया और बहुत कम अवस्था में नन्द वंश का अंत करके वह मगध का राजा बन गया। चाणक्य ने यह भी देखा कि भारत की उर्वरा धरती व अकूत खनिज सम्पदा विदेशी लुटरो को आकर्षित कर रही थी अतः भारत की सुरक्षा के लिए एक सुदृढ़ राष्ट्र का होना और बने रहना बहुत आवश्यक था। इसलिए उसने एक कारीगरों का संगठन बनाया और मगध से लगाकर ,पश्चिम में पुरुषपुर यानि आधुनिक पेशावर और गांधार यानि आधुनिक

अफगानिस्तान तक उत्तरापथ को फिर से बनवाया। उसने पत्थरों का प्रयोग किया। १५०० मील लम्बी इस सड़क पर यात्रियों की सुविधा के लिए जगह जगह कुँए खुदवाये, सड़क के दोनों ओर छायादार पेड़ लगवाए। हर मील पर चिन्ह पट लगवाए जिनपर जगहों के नाम लिखवाये। इसके अतिरिक्त यह भी लिखवाया कि वह किन किन स्थानों से जुड़ते थे। सही मोड़ आदि बताने के लिए दिशा बाण लगवाए। यात्रियों के लिए सराएँ बनवाईं जिनमें भोजन और शयन की व्यवस्था थी। जान माल की सुरक्षा का इंतजाम था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अनेक छोटे मोटे राज्यों को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया। व्यापार और सेना को सुदृढ़ किया। पश्चिम में आक्रमणकारी यवनो को पराजित कर उनसे अच्छे सम्बन्ध बनाये। पूर्व में ताम्रलिप्ति के बंदरगाह तक सुरक्षा का इंतजाम किया। परन्तु ताम्रलिप्ति कलिंग के क्षेत्र में आता था। चन्द्रगुप्त ने कलिंग राज्य से अपने मधुर सम्बन्ध बनाये। क्योंकि पूर्वी द्वीप समूह से आने वाला बहुमूल्य सामान समुद्र मार्ग से आता था और उसका यातायात पश्चिम के बड़े और समृद्ध राज्य, जैसे गांधार, अवंतिका और काम्बोज तक होता था। इसके अतिरिक्त भरुकक्ष यानि आधुनिक भरूच व शूर्पूरखा पत्तन यानि महाराष्ट्र में नाला सोपारा आदि बंदरगाहों से सामान काम्बोज, गांधार, सौवीर, सिंधु आदि प्रदेशों को भेजा जाता था। काम्बोज हिन्दुकुश के आस पास का देश था और राजपुर यानि पूँछ व काश्मीर इसके मुख्य शहर थे। काम्बोज के घोड़े बहुत प्रसिद्ध थे मथुरा के पास उत्तरापथ द्वारावती मार्ग से जुड़ जाता था। द्वारावती मार्ग गुजरात के बंदरगाह द्वारिका तक जाता था। यहां से यह घोड़े म्यांमार और ब्रह्म देश यानि बर्मा में भेजे जाते थे। यह एक महत्वपूर्ण मद था जिसकी जरूरत सभी पूर्वी देशों की सेना को होती थी। काम्बोज के लोग बहुत बलशाली एवं सुन्दर होते थे अतः वह बर्मा व श्री लंका की सेना में भर्ती किये जाते थे। डॉ. डॉन मार्टिनो के अनुसार श्री लंका में मिले एक शिलालेख से पता चलता है कि घोड़ों की सप्लाई सदियों से जारी थी। इनकी सेना में काम्बोजी सैनिक भी थे। पालवंश, होयसला वंश, और सौराष्ट्र के वल्लभी वंश की सेनाओं में भी अनेक काम्बोजी थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद उसका पुत्र बिन्दुसार गद्दी पर बैठा जिसके काल में चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित व्यवस्था कायम रही। बिन्दुसार के बाद अशोक अपने अनेक भाईयों को मारकर मगध की गद्दी पर बैठा। कलिंग पर उसने चढ़ाई की क्योंकि वह ताम्रलिप्ति पर अपना अधिकार चाहता था। परन्तु तभी उसने कलिंग की राजकुमारी से प्रेम विवाह भी किया। राजकुमारी बौद्ध धर्म को मानती थी। सम्राट अशोक का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल गया और उसने अहिंसा का व्रत ले लिया। इसके बाद उसने अपने राज्य का धर्म बौद्ध धर्म घोषित कर दिया। राजनितिक एवं व्यापारिक उपयुक्तता के कारण

उसने उत्तरापथ का जीर्णोद्धार किया क्योंकि बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए यह बहुत आवश्यक था। सर्वविदित है कि अशोक के भिक्षु दूत बौद्ध धर्म को सुदूर उत्तर-पश्चिमी देशों में लेकर गए और सैकड़ों विहार व स्तूप स्थापित किये। उसने पूर्व में थाईलैंड के राजकुमार से अपनी कन्या का विवाह किया और इसी रस्ते से बौद्ध धर्म भारत के बाहर फैला। दक्षिण में उसने अपने पुत्र महेंद्र का विवाह श्री लंका (उस काल का सिंगल द्वीप) की राज कुमारी से किया। अपने वर्चस्व का प्रसार और सुदृढ़ राजनैतिक संबंधों की स्थापना उसने बिना युद्ध के की। यह एक प्रकार से अशोक की कूटनीति थी परन्तु इसी के स्वीकारात्मक परिणाम से अनेक पूर्वी और पश्चिमी देश व्यापारिक लाभ के लिए भारत से जुड़ गए। गुजरात और महाराष्ट्र के बंदरगाह समुद्र मार्ग से चीन, सुवर्णनगरी, म्यांमार, जावा, सुमात्रा और कम्पूचिया आदि देशों से विनिमय करते थे। अब बौद्ध स्मारकों, नालंदा के विहारों तक जाने के लिए मथुरा द्वारावती मार्ग को पुष्ट किया गया। यह भी बहुत संभव है कि मथुरा द्वारावती मार्ग कृष्ण जी द्वारा बनाया गया हो और मौर्यकाल के कई सदियों पहले से रहा हो।

ऐतिहासिक लेखन की कमी, भारत के के ज्ञान से ईर्ष्या द्वेष रखने वाले असभ्य व लालची हमलावरों द्वारा नष्ट किये विद्यालयों, एवं अन्य विदेशी आक्रमणकारियों के नकारात्मक दृष्टिकोण से लिखे विवरण तथ्यों की पुष्टि नहीं करते हैं। मुसलमानों ने जो लिखा वह बहुत कम है और अंग्रेज तो अपने धर्म प्रचार के लिए राम और कृष्ण को नकारते ही रहे। अतः लिखित में यह कहीं नहीं मिलता कि कृष्ण जी ने मथुरा को द्वारका से जोड़ा था। संभवतः भौगोलिक आपदाओं के कारण भी यह मार्ग अवरुद्ध हो गया हो। इस मार्ग की एक शाखा मथुरा की और जाती थी पर एक और शाखा सिंध और मेहरगढ़ को अफगानिस्तान से जोड़ती थी। मथुरा में यह उत्तरापथ से मिल जाती थी इस सड़क से संलग्न प्रदेश को कालांतर में उत्तरापथ कहा जाने लगा। क्योंकि पुराणों में वर्णित उत्तर भारत के सोलह जनपद इस सड़क के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े हुए थे। मध्य एशिया से आगे तजकिस्तान और बाहलीक के पास यह मार्ग चीन को मध्य एशिया से जोड़नेवाले रेशम पथ से जुड़ जाता था। सम्राट अशोक एक उच्च सोच के व्यक्ति थे। उन्होंने अपने राज्य का विस्तार इस प्रकार किया कि कोई भी रक्तपात नहीं हुआ और न केवल आस पास के राज्य, वरन एशिया के सभी देश एक धार्मिक सूत्र में बँध गए। जन साधारण भी महात्मा बुद्ध के आचरण मार्ग का अनुसरण करने लगा चाहे वह चीनी हो या मंगोल या तुर्की। इस मैत्रीपूर्ण वातावरण में अनेक देशों के यात्री महात्मा बुद्ध के जन्मस्थान श्रावस्ती, बोध गया, सारनाथ, साँची आदि स्थानों पर तीर्थ करने आने लगे। अतः अशोक ने उत्तरापथ को सुदृढ़ किया। उसके काल में ग्रीक यात्री मेगस्थनीज़ भारत आया और उसने

एक पुस्तक लिखी जिसका नाम इंडिका था। यह पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है परन्तु इसके छिट-पुट अंश अन्य ग्रीक लेखकों के वृत्तांतों में मिलते हैं। उसने गांधार से पाटलिपुत्र की यात्रा की। वह बताता है की कैसे उत्तरापथ आठ भागों में बना।

१. पुरुषपुर से तक्षशिला तक
२. तक्षशिला से सिंधु नदी के पार झेलम तक।
३. झेलम नदी के क्षेत्र से व्यास नदी तक।
४. व्यास नदी के क्षेत्र से यमुना नदी तक वाया सतलुज और हस्तिनापुर (दिल्ली) तक।
५. दिल्ली से थोड़ा ही आगे गढ़मुक्तेश्वर में गंगा नदी से कान्यकुब्ज तक।
६. कन्नौज से प्रयागराज तक।
७. प्रयाग से पाटलिपुत्र यानि पटना।
८. पटना से ताम्रलिसि यानि आज का तामलुक बंदरगाह तक।

अशोक के अहिंसावादी धर्म प्रसार से , उत्तरापथ पर आपराधिक गतिविधि कम हो जाने से व्यापार की अपूर्व वृद्धि हुई। इसके पहले पौरुष का मापदंड युद्ध विजय अथवा बाहुबल से आँका जाता था परन्तु अब उसका पलड़ा धनोपार्जन और व्यापारिक क्षमता की ओर झुक गया। भारत के श्रेष्ठि वर्ग (सेठों) का जन्म हुआ। उसकी मान मर्यादा ऐश्वर्य समृद्धि और कदाचित वैभव के प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। समाज अंतर्मुखी हो गया। सबसे अधिक मारक परिवर्तन भारत की सेना का पतन हुआ। शौर्य का युग पीछे रह गया।मौर्य काल के दो सौ साल तक कोई बड़ा युद्ध नहीं लड़ा गया। चाणक्य के मरने के बाद ब्राह्मण धर्म और वैदिक शिक्षा पर भी नकारात्मक असर हुआ। मनु स्मृति में वर्णित क्षत्रिय मर्दन के बजाय अर्जन में सिद्धहस्त होने लगा। सेना की तलवार को जंग लग गया। किसी भी राजवंश में शक्ति व सामर्थ्य सदा नहीं बना रहता है। प्रथम सदी आते आते मौर्य राजवंश भोग विलास में विलीन हो गया। बौद्ध धर्म संघों में बँट गया। संख्या जब शक्ति बन जाती है तो गुणवत्ता का नाश होने लगता है। उत्तर मौर्यकाल में भारत सैन्यबल से कमजोर पड़ गया। मगध साम्राज्य ,जिसकी सीमाएं उत्तर पूर्व में चीन तक और दक्षिण में श्री लंका तक फैली हुई थीं कालान्तर में खेत रहा। और देश की धन सम्पदा और व्यापारिक विकास का फायदा उठाने अनेक बर्बर आक्रामक उत्तरापथ के माध्यम से देश में आ धमके। सबसे अधिक इसका लाभ कुषाण वंश ने उठाया। प्रथम सदी ईसापूर्व से दूसरी सदी के अंत तक भारत के उत्तरापथ से अनेक आक्रामक एसियाई दल व कबीले भारत में घुसे और उन्होंने चन्द्रगुप्त और अशोक के स्वर्णकाल को भोगा। शक ,यवन ,कुषाण हूण चीनी आदि सब उत्तरापथ से भारत में पैठे। सबने देशवासियों को मारकर लूटपाट की और कई कई दशकों तक राज करते रहे।

इस काल में कनिष्क के अलावा कोई श्रेयस्कर

राजा नहीं हुआ। कनिष्क ने गांधार को जीतकर अपने राज्य की सीमा गंगा के मैदान तक बढ़ा ली। कनिष्क उदारमना व्यक्ति था उसने भारत के सभी धर्मों में रुचि दिखाई। और बौद्ध धर्म को अंगीकृत किया। यही नहीं उसने बौद्ध धर्म को तिब्बत और दक्षिणी पश्चिमी चीन तक फैलाया। तिब्बत के भिक्षु हिमालय के कठिन दर्रों के रस्ते चीन में आने जाने लगे। गुप्तकाल में उत्तरापथ को दक्षिणापथ से यात्रियों का बहुत आवागमन मिला।

हिन्दू ब्रह्मणो को मध्य भारत के अवन्ति , माहिष्मती , प्रतिष्ठान आदि के मंदिरों से प्रश्रय मिला। हिन्दू धर्म की पुनर्स्थापना हर्ष वर्द्धन के काल में हुई। हिन्दू धर्म दक्षिण से उत्तर की ओर की ओर फैलने लगा। बौद्ध धर्म दायम होता गया। मध्यकाल में अनेक उत्कृष्ट मंदिरों का निर्माण हुआ। उत्तर भारत में भी गंगा के समानांतर मंदिरों का निर्माण हुआ। धार्मिक जागृति से देश की सांस्कृतिक विरासत एक रूप होने लगी। अनेक संतों का आविर्भाव होने से तीर्थ यात्राएं होने लगीं और यातायात बहुत पुष्ट हो गया।

और थोड़ा आगे चलें तो आठवीं नौवीं शताब्दी से इस्लाम धर्म का प्रसार मध्य एशिया से चलकर भारत की ओर हुआ। परन्तु यह सूखे उजाड़ रेगिस्तानी कबाइली मानव समूह थे जिनके पास अपनी ज़मीन नहीं थी। यह दस्यु थे और मारकर खाते थे।

धन की लालसा पूरी हो जाने पर यह वापिस मध्य एशिया लौट जाते थे। परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी से इनके आक्रमण अधिकाधिक भयानक हो गए। उत्तरापथ के सभी जनपद इनका सामना करते रहे। मगर इस काल के बाद उत्तरापथ के भाग्य में लार्शें ही लार्शें लिखी थीं। भारत का उज्जवल इतिहास एक असभ्य लोलुप धर्मान्ध कौम के हाथों लुटता गया। बहुत कम समय में यह खूनी धर्म हमारे देश में गहरे पैठ गया और धार्मिक क्रांतियों का आविर्भाव हुआ ।

तलवार की नोक पर भारतीयों को धर्म च्युत करके मुसलमान बनाया गया। सांस्कृतिक सौहार्द नष्ट हो गया। अनगिनत युद्धों की मार झेलने वाला उत्तरापथ जर्जर हो चला।

१६ हवीं शताब्दी में शेरशाह सूरी ने इसका पुनरुद्धार किया और इसको बंगाल से जोड़ा। उसका उद्देश्य ताम्रलिसि के बंदरगाह को मुसलमान साम्राज्य से जोड़ना था ताकि पूर्वी देशों से होनेवाले व्यापार पर उनका कब्जा हो जाए परन्तु ऐसा हो न सका। शेरशाह सूरी ने हर कोस पर कोस मीनारें बनवाईं। सरायें बनवाईं और सैनिकों की सुविधा के लिए अस्तबल बनवाये। पानी पीने के कुएँ और घोड़ों के लिए मांद बनवाईं। छायादार पेड़ लगवाए। मुगल सल्तनत के विस्तार में उत्तरापथ ने बहुत योगदान दिया। अकबर ने पश्चिम की ओर से आनेवाले व्यापार के कारण बारह वर्ष तक लाहौर को अपनी राजधानी बनाये रखा। इस काल में इसका नाम , ' सड़क-ए - आजम ' या ' बादशाही सड़क ' पड़ा। पेशावर और

अफगानिस्तान में इसकी मरम्मत का श्रेय उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अहमद शाह दुर्रानी के पोते महमूद शाह दुर्रानी को जाता है।

अपनी शक्ति और शासन तंत्र को चलाने के लिए हजारों हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया। पूरे एक हजार वर्षों से यह मुहिम चलाई जा रही है भारत में। खेद है कि इसे रोका नहीं गया है। मुस्लिम धर्म को जिसने भी स्वीकार नहीं किया उसे सीधा मौत के घाट उतार दिया। इस जबरदस्ती के परिणामवश अनेक साधू संतों ने समय समय पर अपनी आवाज़ उठाई। और भारत में मध्यकाल से शुरू करके अनेक धार्मिक क्रांतियां हुईं। इनका सूत्रपात अधिकतर दक्षिण में हुआ। शंकराचार्य जी रामानंद जी जैसे अनेक गुरु हुए जिन्होंने जनता को मानवता का सन्देश दिया। यह धार्मिक प्रचार दक्षिण से चलकर अवन्ति, काशी कौशल आदि जनपदों से होता हुआ पंजाब और काश्मीर तक पहुंचा। भारत में भक्तिकाल का सूत्रपात हुआ जिसके फल स्वरूप अनेक संत कवियों ने अपनी शिक्षाएं गीतों और कवित्त के माध्यम से जनता को दीं अनेक क्षेत्रों से होती हुई यह जनमानस का धर्म बनीं यह सीख हिन्दू जनता के डगमगाते आत्म विश्वास को पुष्ट करने के लिए दी गयी और जनता की भाषा में होने के कारण इसकी ग्राह्यता आज तक जीवित और स्वीकृत है। इस अमूल्य साहित्य का प्रसार हमारे संतों ने देशाटन करके किया और देश की एकता को बचाया। यह हमारे प्राचीन राज मार्गों के कारण ही संभव हो सका। हिन्दू शौर्य को जगाने में भी इन कवियों ने अपूर्व योगदान दिया जिससे आक्रांता शक्तियों के विरुद्ध अनेक क्षेत्रीय युद्ध किये गये और अंत में क्रूर मुगल शासन का ह्रास हुआ। विशेषकर उत्तर भारत में। परन्तु भारत की अपार सम्पदा और व्यापार से आकर्षित हो सुदूर यूरोप की समुद्री डाकू घुसपैठियों की तरह भारत में प्रविष्ट हो गए। महाराष्ट्र और गुजरात के बंदरगाह, भरूच, सूरत, और नाला सोपारा से अंदर पैठ कर यह अनेक देशवासी शनैः शनैः पूरे भारत में फैल गए। इनका उद्देश्य केवल व्यापार था मगर यूरोप से ही इनमे आपसी स्पर्धा थी। भारत में भी यह पल्लवित होती रही। इनमे सबसे अधिक कुटिल और जरूरतमंद देश था इंग्लैंड। भारतीय शासकों की अज्ञानता और दोस्ती का फायदा उठाकर यह केवल व्यापारिक वर्ग न रह कर बहूत शीघ्र एक शासन तंत्र बन गया और अपने सभी प्रतिद्वंद्वियों को किनारे कर दिया।

क्लाइव के प्लासी के मैदान में शुजाउद्दौला को हराने के बाद से अंग्रेजों ने मुड़कर नहीं देखा। वर्ष था १७५७ ई। अंग्रेजों ने अपनी कोठी --- व्यापारिक गोदाम कलकत्ता में शुरू की थी। इनका लक्ष्य था मुगल सल्तनत का अंत कर उनका खजाना अपने देश ले जाना। कलकत्ते बंगाल से दिल्ली तक सीधी सड़क थी उत्तरापथ की।

उन्नीसवीं सदी आते आते अंग्रेजों ने पूरे बंगाल और आसाम राज्यों पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया था। पूर्वी बंगाल के कपड़ा उद्योग पर एकाधिकार कर लिया था। धनबाद और आसाम में खनिज के उत्खनन, आसाम में चाय की खेती और व्यापार आदि को पूरे भारत में फैलाने के इरादे से उन्होंने उत्तरापथ को एक महत्वपूर्ण साधन जानकार उसका जीर्णोद्धार किया। मुगल सल्तनत का सबसे जगमग सितारा अवध का क्षेत्र था जहां जनता खुशहाल थी मगर नवाब ऐय्याश था। यह राज्य उत्तर प्रदेश का सबसे अधिक प्राचीन ऐतिहासिक सुदृढ़ राज्य था। मुगल सम्राट तक पहुँचने का रास्ता इसी उत्तरापथ पर स्थित नगरों से जाता था। सं १८३३ से लगाकर १८४८ तक इस सड़क का पुनर्निर्माण हुआ। अंग्रेजों ने उसका पुनरुद्धार किया और उसका नाम रखा दी ग्रैंड ट्रंक रोड। यह २२७१ मील लम्बी सड़क पूर्वी बंगाल के टेक्नाफ जिले से लगाकर पेशावर तक जाती थी। अभी तक इसका निर्माण पथरों से होता रहा था मगर अब गिट्टी और कोलतार से इनको पुष्ट किया गया। अंग्रेजों ने १५०० मील सड़क का नव निर्माण किया। इसकी लागत उस ज़माने में १००० पौंड प्रति मील आई। मगर उस काल के इंजीनियरों का कहना है की उन्होंने ताज महल अवश्य नहीं बनवाया मगर ग्रैंड ट्रंक रोड बनाकर दुनिया का सबसे बड़ा काम किया। पंद्रह साल के इस उद्योग ने अंग्रेजों को जो ताकत और धन दिया उसका दूसरा उदाहरण विश्व के इतिहास में नहीं है। इस पर चलकर यह लखनऊ पहुंचे।

अवध की राजधानी श्री लक्ष्मण जी के द्वारा स्थापित नगर लक्ष्मणपुर थी। रामायण के अनुसार जब देवी सीता को राम जी ने बनवास दे दिया था तो उनको अवध की सीमाओं से बाहर छोड़ने का दायित्व अपने छोटे भाई को सौंपा। लक्ष्मण जी रात के अन्धकार में सीता माता को रथ में बैठाकर पश्चिम की ओर चले। उनके संग श्री हनुमान जी भी थे। राह में गोमती नदी पड़ती थी। हनुमान जी ने उसपर सेतु बाँधा जो आज भी उसी स्थान पर है। (अंग्रेजों ने इसको हनुमान सेतु की जगह मंकी ब्रिज नाम दिया।) सीता जी को वाल्मीकि आश्रम में छोड़कर जब लक्ष्मण जी वापिस अयोध्या लौटे तो उनका मन खिन्न था। उन्होंने गोमती के किनारे रथ रुकवा दिया और हनुमान जी से अकेले वापिस जाने को कहा। उन्होंने कहा कि सीता माता के बिना अयोध्या की कोई साख नहीं रह जाएगी उनकी नज़रों में। इतना जघन्य काम करने के बाद वह जनता को क्या मुंह दिखाएँगे। उन्होंने नदी के तट पर एक नगर बनाया जो लक्ष्मणपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इतिहास साक्षी है कि लक्ष्मणपुर अयोध्या से अधिक प्रसिद्ध हुआ। युगों के उपरान्त लक्ष्मणपुर अवधी भाषा में ' लखनपुर ' और फिर अपभ्रंश में ' लखनवा ' बन गया। जब अंग्रेजों ने अवध के नवाब पर छल कपट से बदइतजामी का इलज़ाम लगाकर उसको राज्य छोड़ने के लिए कहा तो नवाब वाज़िद अली शाह ने अपना शाही

मुकुट उतारकर एक थाली में रखा और थालपोश से ढककर अपने कारिंदे के हाथ अंग्रेज रेजिडेंट को भेज दिया। अंग्रेजी में कहावत बन गयी, **We got it on a plate** . यानि कोई दौलत यदि आपको आसानी से मिल जाए तो वह आपको थाल में सजाकर मिली। लखनवा शहर का नाम अंग्रेजों ने लक-नाउ यानि आज का Lucknow रख दिया।

इस घटना ने भारत के जनमानस पर मर्मान्तक आघात किया और उसका परिणाम हुआ १८५७ की क्रांति। इसी उत्तरापथ पर चलकर मंगल पांडेय की सेना दिल्ली पहुंची, जमुना पुल को पार किया और माल रोड यानि ग्रैंड ट्रंक रोड पर बनी अंग्रेज सेना के फर्स्ट कर्नल की कोठी १ नंबर कैवेलरी लेन पर धावा बोल दिया। वहां एक पार्टी चल रही थी और अंग्रेज नशे में धुत्त होकर नाच रहे थे। मंगल पांडे की सेना ने सबको मौत के घाट उतार दिया। इस तरह सूत्रपात हुआ प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का।

इस घटना का जिक्र श्रीमती मेरी मागरिट के उर्फ " मौली " ने अपनी जगत प्रसिद्ध पुस्तक " दी फार पविलियन्स " में किया है। स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में इसका कोई जिक्र नहीं मिला। संभवतः ऐसी अनेक घटनाएं उस काल में बगावती सिपाहियों के क्रोध का परिणाम थीं। अंग्रेज भाग रहे थे उनसे बचने के लिए। अनेकों ने दिल्ली छोड़कर करनाल में शरण ली। अपनी हार का विवरण अंग्रेज नहीं लिख सकते। परन्तु साहित्य में उपलब्ध है। आजकल इस कोठी नंबर १, कैवेलरी लेन पर दिल्ली का प्रथम मेट्रो स्टेशन बना हुआ है जिसका नाम " दिल्ली विश्वविद्यालय " है।

कोई भी सड़क हो निरंतर चलती ही रहती है। भारत की सड़कें भी प्राणवान संस्थाएं हैं जिन्होंने भारत को सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक एक सूत्र में बाँधा है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक और पूर्वांचल से पुरुषपुर तक भारत की अखंडता का उत्तरदायित्व हमारे उत्तरापथ और दक्षिणापथ को जाता है। यह कथन सर्वथा मिथ्या है कि भारत को एक राष्ट्र बनाने वाले अंग्रेज थे। उनके आगमन से सदियों पहले से भारत एक संस्कृति एक धर्म और एक सामाजिक संविधान से सम्पुष्ट शांतिमय देश था जिसकी प्राकृतिक और व्यापारिक सम्पदा का अंत नहीं है।

कोठी

****** यह कोठी इस घटना के ठीक सौ वर्ष बाद बिकने को आई। यानि भारत की असली आज़ादी के बाद सन १९५७ ई में। भारत उस काल में पंजाब के विभाजन से उबर रहा था। मेरे दादा ससुर जी सिविल लाइन्स के एक मकान में अपने तीन बेटों और उनके बच्चों

के संग रह रहे थे। वह लाहौर में पूरे सौ मकान छोड़कर आये थे। उनकी विशालकाय दुकान में आजकल लाहौर का बानू बाज़ार बना हुआ है। उनको एक बड़े घर की तलाश थी। उसी काल में मेरे पति श्री इन्दर कुमार जी विश्वविद्यालय में बी ए करने गए। रोज उस कोठी के आगे से गुजरते थे। तभी उसपर नीलामी का बोर्ड लगा हुआ देखा। कोठी में सोलह कमरे थे। बहुत बड़े बड़े बागीचे चारों ओर थे। दो विशाल गेट थे। पीछे घुड़साल और नौकरों के रिहाइशी क्वार्टर थे। लंबा चौड़ा मेहरा परिवार उसमे आराम से रह सकता था। उस काल में दिल्ली के मुख्य इंजीनियर वॉलटर साइक्स जॉर्ज उस कोठी में रहते थे। उन्हीं से इस कोठी का सौदा हुआ था। कागज़ी कार्यवाही होते होते काफी समय लगा। सौदा पूरा हो जाने पर एक दिन जब वह अपना घर श्री राजा राम मेहरा को दिखा रहे थे, और घर की छत पर खड़े थे, सीढ़ियां उतरते समय उनको ठोकर लगी और वह गिर पड़े। यह सन १९६२ की बात है। दुर्भाग्य से इसी दुर्घटना से उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी पत्नी को ब्रिटिश हाई कमीशन ने उनके स्वदेश भेज दिया। वह बहुत बूढ़ी और डिमेंशिया की मरीज़ थीं।

नई कोठी में आने के बाद उसको खूब सजाया और संवारा गया। परन्तु जहां भी माली खुदाई करते थे वहाँ से अस्थियां निकल पड़ती थीं। तभी स्थानीय लोगों ने बताया कि इस घर में अंग्रेजों का कत्ले आम हुआ था। अतः यह जगह अशुभ मानी जाती थी। इसलिए माल रोड यानि ग्रैंड ट्रंक रोड की तरफ जो बागीचा था उसको कभी किसी ने नहीं खोदा था। वहां कीकड़ के पेड़ों का जंगल ही बना रहा। इसके पूरे पांच वर्ष के बाद मेरी शादी हुई और मैं दुल्हन बनकर इसमें रहने आई।

सन १९९५ में यह कोठी दिल्ली मेट्रो ने हासिल कर ली। मेहरा परिवार आगे बढ़ चुका था। बड़े लड़के पढ़ लिखकर बाहरी देशों में चले गए थे। जो बच गए उनको बहुत अच्छा मुआवज़ा मिल गया। अब जहां हमारा कमरा आदि था वहां स्टेशन बन गया है। हम देखने गए तो हमारी खातिरदारी में हमें दिल्ली मेट्रो की मुफ्त सैर कराई गयी।

चिन्ता ऐसी डाकिनी, काट कलेजा खाया।

वैद्य बिचारा क्या करे, कहाँ तक दवा लगाया॥

कबीर के दोहे





माफी की दुकान

देवियों और सज्जनों, ये बरस बीत गया। बरस जब बीतता है तो ना सिर्फ पुरानी संवेदनाओं को रौंदकर जाता है बल्कि नई संभावनाओं के द्वार खोलता भी है। अमूमन नये बरस की पूर्व संध्या पर लोग उत्सव मनाते हुए पार्टी करते हैं। पार्टी करना अब एक परंपरा बन गया है। पर पार्टी पर्व से पूर्व, पश्चताप पर्व मनाने का भी प्रचलन विगत कुछ वर्षों से जोरों पर है। हमारी संस्कृति में आमतौर पर पश्चताप या क्षमा पर्व किसी बड़ी दुर्घटना या अनहोनी होने के बाद शोक प्रकट करने के लिए मनाया जाता है। अमूमन शोक का समय होने के उपरांत एक वर्ष तक कोई विवाह-मुंडन आदि नहीं किया जाता है पर उत्तर आधुनिक युग में सब कुछ उल्टा-पुल्टा हो गया है। जिस तरह हाँगांग की तरह काफिन होम्स का कांसेप्ट हमारे यहाँ आया वो कितना आजीवो गरीब है।

हमारे यहाँ “घर एक मंदिर” की बात हुआ करती थी अब तो “घर एक ताबूत” का कांसेप्ट प्रचलन में हो गया है। मुंबई में हाँगांग के काफिन होम्स की तरह बहुतेरे घर आबाद हो गए हैं जिनमें शौचालय और रसोई सटे हुए ही होते हैं। अब जगह की कमी या सब कुछ एक जगह ही उपलब्ध होने की सोच ही शायद इसका कारण रही होगी। मुंबई में भीड़ बहुत है, व्यापार का केंद्र माना जाता है। कुछ दिन पहले वहाँ पर एक जगह पर एक कम्पनी ने लोगों को जीते जी अपने दाह संस्कार को बुक करवाने के पैकेज के विज्ञापन प्रदर्शित किये थे। इसमें चन्दन की लकड़ी से लेकर गंगा में अस्थियाँ विसर्जित करने का फुल इंतजाम। यानी जिसकी जैसी हैसियत वैसी ही उसकी अधोगति। ना पुत्र के किरिया बैठने की जहमत और ना ही किसी परिजन के दाह संस्कार में शामिल होने की शर्त। अगर आपकी जिंदगी आलीशान रही हो तो आपकी मौत भी आलीशान हो सकती है।

शर्त सिर्फ एक ही है “पैसा फेंको – तमाशा देखो”।

मौत तो एक ही बार आती है पर इंसान नया साल हर वर्ष मनाता है। नये साल के मौके पर लोग एक दूसरे को लंबी उम्र की शुभकामनाएं देते हैं। पहले खत लिखकर या ग्रीटिंग कार्ड लिखकर लोग एक दूसरे को शुभकामनाएं भेजा करते थे जिसमें धन और श्रम दोनों लगते थे, इधर-उधर से मांगी गई शायरियाँ लिखी जाती थी। जिनका मजमून कुछ यूँ हुआ करता था—

“चली जा ग्रीटिंग सरकते-सरकते,
महबूब से कहना नमस्ते-नमस्ते”।

ये ग्रीटिंग छिप-छुपाकर लिखे जाते थे जिसमें छपे तो लाल गुलाब होते थे, पर कभी-कभी लड़के लड़कियाँ स्याही के साथ अपने खून को मिलाकर ग्रीटिंग को लालमलाल कर दिया करते थे। ये और बात थी कि ग्रीटिंग घर वालों द्वारा पकड़े जाने पर लड़के-लड़कियों की इतनी कुटाई-पिट्टाई होती थी कि नया साल उनके लिए नया सबक सिखाकर जाता था जिसमें आशिकी का सारा भूत उतर जाया करता था। तब उधार की शायरियाँ चला करती थी अब टीपे हुए कट-पेस्ट मेसेज चला करते हैं। मुफ्त के मेसेजिंग ऐप की बदौलत नये साल में सबको शुभकामना ठेल दी जाती है।

लोगबाग शुद्ध हिंदी, खालिस उर्दू और शुद्धतम संस्कृत में भी शुभकामना संदेश ठेल दिये करते हैं। जिसने कभी जीवन में तुकबंदी तक ना की हो वो भी गालिब की तर्ज की शायरी नये साल में मेसेज के जरिये ठेल रहा है। जय हो जुकरबर्ग की कट-पेस्ट सेवा।

ऐसे ही नये साल के पहले दिन की शुभकामनाओं के मेसेज के एक दिन पहले आता है, पश्चताप का मेसेज जो कि क्षमापर्व की तरह हो चला है। जिसमें पूरे साल दुत्कार-फटकार कर बात करने वाले लोग संत की तरह उदारता से क्षमा मांगते हुए कहते हैं कि “अगर बीतते हुए साल में मेरे बात-व्यवहार से जाने-अंजाने किसी भी तरह से आपको कष्ट पहुंचा हो तो मैं आप से क्षमा मांगता हूँ”।

यह विनीत भाव से भेजा हुआ मासूमियत से भरा मेसेज उसी तरह की उल्टबांसी है जैसे किसी का कत्ल कर दिया जाए और उसके प्राण निकलने से पहले उसी से गुनाह-ए-कत्ल बख्शवा लिया जाए।

माफी की दुकान में कापरमाफी भी इस साल शामिल की गई है, क्योंकि कापर जिसे सबसे गया गुजरा मेटल माना जाता था वह भी अब आम आदमी की पहुँच से बाहर हो गया है। इस साल सोने चांदी की कीमतों की तरह कापर की कीमतों ने भी तहलका मचा दिया।

माफी की दुकान में सबसे हाट केक की तरह बिक रही माफी है, महबूब से माफी मंगवाना। इस माफी के रेट बदलते रहते हैं क्योंकि यह बात पर निर्भर करता है कि कपल का ब्रेकअप कितने दिनों पहले हुआ है और किन वजहों से हुआ है? अगर प्यार में धोखा दिया गया है और एक्स से दुबारा मिलवाना है तो गोल्डन माफी के रेट लगेंगे। पति-पत्नी के बीच विवाद की माफी मंगवाने के लिए सिल्वर माफी के रेट लगते हैं जो सिल्वर के रेट की तरह बहुत ज्यादा हैं। पर माफी वाली कम्पनी का दावा है कि फिर भी यह धनराशि, मैन्टेनेंस और एल्युमिनी से सस्ती पड़ती है।

माफी कम्पनी की दुकान में माँ-बाप से माफी मांगने का कोई पैकेज नहीं है। माफी कंपनी का मानना है कि बच्चों को अपने माँ-बाप से माफी मांगने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि माँ बाप तो अपने बच्चों को माफकर ही देते हैं। क्योंकि बागबां के अमिताभबच्चन जैसे बच्चों को माफी ना देने वाले बाप सिर्फ फिल्मों में पाए जाते हैं, ऐसे कठोर हृदय वाले पिता सिर्फ रील लाइफ में होते हैं, रियल लाइफ में नहीं।

माफी वाली कम्पनी कार्पोरेट सोशल रेस्पॉन्सबिलिटी (सीयसआर) भी करती है। उसने प्लेटिनम माफी अमेरिका के प्रेसिडेंट डोनाल्ड ट्रम्प साहब के लिए आरक्षित कर रखी है। यह माफी ट्रम्प साहब को भारतीयों से मांगनी है जो उन्होंने अमेरिका के चुनाव में भारत वंशियों और भारतीयों से वादा किया था कि वह सत्ता में आयेगे तो भारत और अमेरिका की दोस्ती को नई ऊँचाई देंगे। लेकिन उन्होंने मित्रता में सुदामा की भाँति कपट किया। उन्होंने ना सिर्फ भारत से अमेरिका जाने वाले माल पर पचास परसेंट कर लगा दिया बल्कि भारतीयों की वीजा की फीस को बहुत ज्यादा बढ़ा दिया ताकि भारतीय लोग अमेरिका ना जा सकें। एक तरफ तो ट्रम्प भारतीय लोगों का अपना मित्र कहते हैं वहीं दूसरी तरफ भारत की अर्थव्यवस्था को “डेड इइकोनमी” कहकर बदनाम करते हैं। क्या मित्रता में यह छल माफी के लायक है? और अगर यह माफी मांगी जाती है तो यह दुनिया की सबसे बड़ी माफी होगी, यानी प्लेटिनम माफी।

एक अदना सा साहित्यकार इन माफियों की फेहरिस्त पढ़ रहा था। उसने मुस्कराते हुए एक उस्ताद शायर का शेर पढ़ा—

“रहनुमाओं ने कहा है ये साल अच्छा है,
दिल को खुश रखने का गालिब ख्याल अच्छा है।”

लघुकथा

नील मणि

स्वतंत्र लेखन
मेरठ (उत्तर प्रदेश)



पति परमेश्वर

सुबह-सुबह गुप्ता जी के कमरे से दो छींके गूँजीं —“छीं... छीं...”

बस फिर क्या था, मानो प्रधानमंत्री ने राष्ट्र को संबोधित कर दिया हो—“छींकों को हल्के में मत लो, यह प्रकृति का अलार्म है!”

गुप्ता जी तुरंत ही सचेत हो गए और अपनी अध्यापिका पत्नी को भी सचेत किया- उनकी देखभाल में कोई कोताही ना बरती जाए।

“ गर्म पानी, फिर तुलसी-अदरक-लौंग-बड़ी इलायची वाली चाय, और हाँ... नींबू-शहद का काढ़ा भी आदि का बड़े अधिकार पूर्वक आदेश पारित कर दिया।” शाम को बैंक से लौटे तो पूरे पति-परमेश्वर अंदाज में ब्रिफ़केस पटका और चादर तानकर बिस्तर में घुस गए। पत्नी कॉलेज से लौटीं और पति-सेवा-धर्म निभाने में लग गई।

तीन दिन बाद -

गुप्ता जी तो भले चंगे ही थे या हो गए, पर पत्नी जी का आज सिर भारी और शरीर टूट रहा था। कॉलेज जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी तुरंत थर्मामीटर निकाल बुखार नापा तो 102 डिग्री...ओहो! कॉलेज सूचना देकर, जरूरी काम - गुप्ता जी का नाश्ता व लंच बॉक्स तैयार कर, चादर लपेटकर लेट गई।

गुप्ता जी जाते समय दवा लाने का वादा कर बैंक रपट लिए।

शाम को जब घर में घुसे। मेज पर ब्रिफ़केस पटक, चाय की गुहार लगाई; साथ ही फ़रमाया - हा--- बहुत थक गया, अब बढ़िया सी चाय और कड़क पकौड़ी मिल जाएँ तो मजा ही आ जाए।

पत्नी जी, जो बिस्तर से चिपकी पड़ी थी; चादर में दुपकी रहीं।

कोई जवाब न पाकर गुप्ता जी झल्लाए से, कमरे में प्रविष्ट हुए, देखा— पत्नी जी चादर में सिकुड़ी पड़ी हैं; थर्मामीटर तकिए के पास पड़ा है।

सुबह का दृश्य याद आते ही खिसियाए से गुप्ता जी उल्टे पांव दवा लाने लौट पड़े।



गिरेन्द्रसिंह भदौरिया "प्राण"

"वृत्तायन" 957 स्कीम नं. 51 इन्दौर -6 म.प्र.

लेख

कविता और काम का कोई गुरु नहीं होता

काव्य-प्रणयन की सामर्थ्य उत्पन्न करने वाले साधनों को 'काव्य हेतु' या काव्य का कारण कहा जाता है। ये साधन ही कवि को काव्य-प्रणयन में सक्षम बनाते हैं। आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य या कविता के लिए प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास ये तीनों ही हेतु या कारण बताए गए हैं। ये तीनों एक साथ मौजूद होने पर ही काव्य का निर्माण होता है। कवि की प्रतिभा या शक्ति के अभाव में काव्य का प्रसार या अवतरण सम्भव नहीं है।

चूँकि कविता काव्य का ही भेद है इसलिए ये हेतु कविता प्रणयन के लिए भी आवश्यक हैं, किन्तु कविता अपने आप में एक अवतरण भी है। इसका अवतरण होना ही इसे विशेष बनाता है। विशेष होने से इसके हेतुओं में कुछ और भी है जिनकी चर्चा आवश्यक है। ऐसा स्वतः सभी को आभासित भी होता है। अतः यहाँ इसके हेतुओं पर चर्चा व कविता और काम के प्रणयन पर विचार करना इस आलेख का अभीष्ट है।

रचना के अवतरण की एक प्रक्रिया होती है। यह एक स्वाभाविक घटना होती है, जिसे अच्छे-अच्छे कवि भी नहीं जान पाते और घटना घट जाती है अर्थात् रचना हो जाती है। रचना के अवतरण के उपरान्त कवि को जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वह अनिर्वचनीय व वर्णनातीत होती है। अवतरण की यह प्रक्रिया जानबूझ कर न होकर कवि के मानस में अनायास और स्वाभाविक रूप से चलती रहती है। समाधिस्थ कवि की उपज होने से इसकी उत्पत्ति पर किसी तर्क की कहीं गुंजाइश ही नहीं होती साथ ही अवतरण की इस पूरी प्रक्रिया में गुरु की कहीं भी आवश्यकता महसूस ही नहीं होती।

आइए पहले भाव और विचार में मोटा अन्तर समझते हुए विषय को गति देते हैं। भाव तो सभी के हृदय में जन्म लेते हैं लेकिन आलम्बन के सहारे जब कवि के अन्तःकरण में बीज रूप भाव जन्म लेते हैं, तब कवि शनैः शनैः समाधि अवस्था में पहुँच जाता है और वह कल्पना लोक में भ्रमण करता है। जहाँ भावानुकूल होने पर वह परकाया प्रवेश भी कर सकता है। कवि मन की यही अवचेतन अवस्था भी होती है।

कल्पना लोक तो कल्पना लोक है, जहाँ शब्द शक्तियों व काव्य के बाह्य और आन्तरिक तत्त्वों के सहयोग से अकल्पनीय कविता का सृजन पल्लवित होकर अवतीर्ण होता है। यह अवतरण अत्यन्त क्लिष्ट होते हुए भी अति सहज व अनायास होता है। अतः कविता की रचना प्रक्रिया में समाधि और कल्पना को भी मैं कविता के हेतु मानता हूँ। इस तरह प्रतिभा, निपुणता, अभ्यास, समाधि और कल्पना को मिला कर कविता के कुल पाँच हेतु (कारण/साधन) बनते हैं।

ऊपर कह चुका हूँ कि अवतरित होने से कविता तर्क से परे हो जाती है। यों तो प्रकृति में कमल खिलता है और मनुष्य हँसता है लेकिन तर्क से परे होने के कारण कवि का कमल पुष्प प्रकृति के विपरीत हँस भी सकता है और मनुष्य खिलखिला सकता है। इस पर कोई आपत्ति नहीं लेता क्योंकि जब इसकी व्याख्या की जाती है तब स्पष्ट किया जाता है कि कवि का आशय कमल के खिलने और मनुष्य के हँसने से ही है। वहीं विचार मस्तिष्क में सतत् चलने वाली प्रक्रिया की उपज होते हैं। मस्तिष्क का विषय होने से हर विचार तर्क की कसौटी पर तुला हुआ होता है। मस्तिष्क में हर विचार को तर्क शक्तियों के माध्यम से होकर गुजरना पड़ता है।

दूसरी बात यह है कि विचार में प्रायः अभिधा शब्द शक्ति प्रधान होती है। यद्यपि यह जरूरी शर्त नहीं है। अन्य शब्द शक्तियाँ भी अपना कार्य करती हैं लेकिन विचार में कुछ भी लपेटने से दूसरी शब्द शक्तियों का बोलबाला होने का खतरा रहता है, जिससे विचार का आशय बदल भी सकता है। अतः इसकी तार्किक स्थिरता में परिवर्तन की कोई गुंजाइश कम ही होती है। विचार को तर्कानुशासन की कसौटी पर कसे जाने के कारण कमल पुष्प हँस नहीं पाता, उसे खिलना ही पड़ेगा। मनुष्य खिलखिला नहीं सकता उसे हँसना ही पड़ेगा। तर्क से विचारों की पुष्टि होने के कारण कोई विचार विषाद जन्य भी हो सकता है जहाँ आनन्द की प्राप्ति न हो। इसमें ज्ञान की विशेष आवश्यकता होती है।

अपवाद स्वरूप गद्य में कुछ आलेख कहानी आदि ऐसे आ सकते हैं, जिनमें भावों की प्रधानता हो सकती है,



जैसे मुंशी प्रेमचन्द की कहानियाँ, ललित निबन्ध आदि, वहीं कविताएँ भी ऐसी हो सकतीं जिनमें भावों की शून्यता हो और विचारों की प्रधानता हो जैसे आयुर्वेद में लिखे गए श्लोक आदि। इनमें औषधि और रोगों से सम्बन्धित कथ्य रहेगा। इनमें भावों से भरी कल्पना को स्थापित नहीं किया जा सकता अतः कविता के दर्शन ही नहीं होते। इतना सब कुछ होते हुए भी अनुभव के आधार पर विचार और भाव का अन्तर समझ में आ जाता है।

इसे अन्य उदाहरण से भी समझते हैं जैसे उन्हत्तर सत्तर इकहत्तर बहत्तर तिहत्तर चुहत्तर पचत्तर छियत्तर सतत्तर अठत्तर इसमें लय भी है तुक भी है तान भी है क्रम भी है सार्थकता भी है। लेकिन यह भाव भरी कविता नहीं है वहीं दूसरा उदाहरण देता हूँ। हन्दी में तिरसठ तेतीस और छत्तीस के अंकों को ऐसे ६३, ३३, ३६ लिखा जाता है। किसी अज्ञात कवि का एक दोहा है, जिसमें एक सखी दूसरी सखी को बता रही है कि हे सखी! रात को मैं अपने पति से नाराज़ हो गई। अब आगे ६३, ३३, ३६ के अंकों की बनावट (आकृति) देखकर अर्थ आप स्वयं लगाइए -

"बात बात में रात सखि, गई पिया सों रीस।
त्रेसठ से तेतिस भई, तेतिस से छत्तीस॥"

इस दोहे में वे ही अंक अर्थ के ऐसे विस्फोटक बन गए हैं जैसे ध्वनि काव्य में स्फोट होता है। निश्चय ही काव्य कर्म बहुत कठिन साधना है किन्तु आश्चर्य ही है कि कवि मन में इस जटिल कविता का सहज ही अवतरण होता है। यह कवि को मिला ईश्वरीय वरदान है। इस वरदान के बल पर एक समर्थ कवि गहरी अथवा उथली बात भी आसानी से कह लेता है। जिस कठिन बात को बड़े-बड़े विद्वान् नहीं कह पाते हैं उसे एक कवि छोटी सी रचना के द्वारा कह जाता है। इतना ही नहीं उसे कालजई बना देता है और एक दीर्घ अन्तराल के बाद कवि स्वयं की रचना पर भी विस्मित होते हुए आश्चर्य व्यक्त कर सोचने लगता है कि यह मैंने कैसे और कब लिख दिया?

शाब्दिक और व्याकरण की दृष्टि से देखें तो संस्कृत के तीन शब्द ऐसे हैं जो काम और कविता के लिए प्रयुक्त होते हैं। प्रणय, प्रणयन और प्रणीत तीनों में पहला और दूसरा शब्द काम के प्रबोधन के लिए व दूसरा और तीसरा शब्द काव्य रचना के लिए प्रयुक्त होता है। प्रणय में प्र उपसर्ग है नी धातु है अच् प्रत्यय है, वहीं प्रणयन में प्र उपसर्ग है नी धातु है ल्युट् प्रत्यय है तो प्रणीत में प्र उपसर्ग है नी धातु है क्त प्रत्यय है। इन शब्दों में कविता और काम दोनों के लिए प्रयुक्त यहाँ एक ही धातु है 'नी'। नी धातु के कई अर्थों में एक अर्थ लाना भी है। लाने का अभिप्राय रचना लाने से भी है और परिणय बन्धन से भी। दोनों में ही नव सृजन को लाया जाता है।

अवतरण है तो यह कवि के लिए नैसर्गिक है। नैसर्गिक क्रियाओं के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं होती। जैसे शरीर से पसीना निकलना एक नैसर्गिक क्रिया है इसमें गुरु की आवश्यकता नहीं होती, वह स्वतः निकलता है। काम भी नैसर्गिक है, वह भी स्वतः उद्भूत होता है। इसे भी सिखाया नहीं जाता। अल्प बुद्ध पशुओं की वृत्तियों से इसे और भी आसानी से समझा जा सकता है। दोनों ही स्वाभाविक प्रक्रियाएँ हैं इसलिए प्रणय और प्रणयन में गुरु की आवश्यकता नहीं है। अतः स्पष्ट है कि कविता और काम का कोई गुरु नहीं हो सकता।

अब आपके मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कविता का कोई गुरु नहीं होता है तो कवियों में गुरु परम्परा तो बहुत प्राचीन है फिर गुरु किसलिए ? इसका उत्तर यह है कि अवतरण का कोई गुरु नहीं होता लेकिन जिस प्रकार प्रसूता की कोख से बालक के जन्म लेने पर डॉक्टर की निगरानी में नर्सों या घर पर दाई आदि के द्वारा नव प्रसूत बालक के शरीर का शोधन किया जाता है, उसे स्वस्थ और जीवित रखने के लिए उपाय बताए जाते हैं।

ठीक वैसे ही कवि की हृदय पेटी से कविता का अवतरण तो होता है लेकिन अवतरित होने पर उसका भी श्रृंगार किया जाता है, छन्द आदि अनुशासन की दृष्टि से अवतरण में भी कई दोष हो सकते हैं जो भावगत अथवा शिल्पगत हो सकते हैं जिनका शोधन किया जाना आवश्यक होता है। जिन्हें कवि अपनी क्षमता से दूर करता तो है किन्तु अज्ञानता बस उन्हें समग्रता से दूर नहीं कर पाता है। ऐसे में आवश्यकता होती है एक सफल मार्गदर्शक अथवा गुरु की, जो हर दोष का हरण कर उसे परिमार्जित और संशोधित करा दे।

बाद में कवि को भी उसे सँवारने के लिए कला सीखनी पड़ती है। स्वयं को कविता का समीक्षक होना पड़ता है। यह कला सतत् अभ्यास और दीर्घ अनुभव से आती है किन्तु उसमें सन्देह भी रहता ही है। इसलिए कवि के लिए काव्य शिल्प में पारंगत गुरुओं की आवश्यकता होती है। कारण छन्द साधना का अत्यन्त जटिल होना भी है। कलागत शिल्प के सौन्दर्य की आभा को निखारने की विद्या मात्र एक गुरु ही दे सकता है क्योंकि कविताओं में उसके बाह्य और आन्तरिक तत्वों व छन्दानुशासन को बचाए रखना रंग और रूप से कविता के आवरण को बचाए रखना होता है।

ईश्वर ने संसार को लयबद्ध किया है। कवि काव्य के द्वारा समाज को लयबद्ध करता है। वह हास्य और उपहास का माद्दा रखता है तो श्रृंगार से लेकर वीभत्स तक के कथ्य में भी सभी को आनन्द देता है। अपनी कल्याणकारी और सन्देश परक रचनाओं से मानवता में नैतिकता का संचरण करता है वहीं उसे सकल सृष्टि के स्वास्थ्य की चिन्ता करनी होती है। इसीलिए हम कह सकते हैं कविता के शिल्प के स्वास्थ्य के लिए गुरु आवश्यक भी है।



प्यार का पछतावा

अंजू और रामवती की बहस इतनी बढ़ चुकी थी कि घर के बाहर तक आवाजें आने लगी थी। बाहर आते जाते लोग रुक कर गौर करने लगे थे। घर पर और कोई नहीं था। रामवती और अंजू याने सास और बहू की आवाजों में जहाँ सासु रामवती कठोर देहाती लहजे में प्रताड़ित करने वाले स्वर में चिल्ला कर बोल रही थी वहीं बहू अंजू कुछ कमजोर कुछ करुण लेकिन मजबूत विरोध व्यक्त करते हुए सासु की बात मानने से इंकार कर रही थी। मुद्दा आज इस बात का था कि, सासु द्वारा अंजू और रामवती की बहस इतनी बढ़ चुकी थी कि घर के बाहर तक आवाजें आने लगी थी। बाहर आते जाते लोग रुक कर गौर करने लगे थे। घर पर और कोई नहीं था। रामवती और अंजू याने सास और बहू की आवाजों में जहाँ सासु रामवती कठोर देहाती लहजे में प्रताड़ित करने वाले स्वर में चिल्ला कर बोल रही थी वहीं बहू अंजू कुछ कमजोर कुछ करुण लेकिन मजबूत विरोध व्यक्त करते हुए सासु की बात मानने से इंकार कर रही थी। मुद्दा आज इस बात का था कि, सासु द्वारा अपने एक दूर के रिश्तेदार के खेत में मूंगफली तोड़ने का कार्य करने हेतु बहू को लेकर जाना था और बहू इस बात के लिए कतई तैयार नहीं थी।

सासु के अनुसार यह इस तरह के कार्य थे जो मध्यमवर्गीय देहाती क्षेत्रों में फसल उगने के बाद मानवीय हाथों से संपादित होते हैं और मजदूरों की सहज उपलब्धता ना होने के कारण परिचित परिवारों या रिश्तेदारों के पुरुष महिलाएं सहायता के रूप में एक दूसरे के खेतों में काम करते हैं और उसके बदले पारिश्रमिक भी लेते हैं। इसे वे किसी प्रकार की मजदूरी करना नहीं मानते वरन इस काम को एक सशुल्क सहायता का सम्माननीय स्वरूप मानते हैं। लेकिन ना समझने वाले या शहरी मानसिकता वाले दूर से देखने वाले लोगों के लिए तो यह दूसरे के खेतों में मजदूरी करना ही होगा जो अंजू को मंजूर नहीं था।

अंजू आश्चर्यचकित थी कि क्या उसे अब खेतों में मजदूरी करने भी जाना पड़ेगा? एक पढ़ी-लिखी ग्रेजुएट लड़की को दूसरे के खेत में मजदूरी करने जाना ...? क्या उसे ये दिन भी देखना होंगे? वह कभी भी नहीं जाएगी मजदूरी करने, खेती के काम करने को नहीं जाएगी उसने

अपनी सासू को स्पष्ट रूप से यह जता दिया कि मैं ऐसे काम नहीं करूंगी।

बहू का स्पष्ट रूप से आदेश की अवहेलना करना रामवती के गुस्से को सातवें आसमान तक ले जा चुका था। दोनों में बहस हो रही थी और यह बहस कटु संवादों में बदल चुकी थी। अंजू जानती थी कि उसके इस तरह से इनकार करने का परिणाम घर में बहुत बड़े विवाद को जन्म देगा, लेकिन अब भर चुकी थी वह, सहन करने की सीमा आ चुकी थी। सासु के द्वारा लाख कटु संवाद सुनाने, दबाव देने के बावजूद अंजू ने खेत पर जाना स्वीकार नहीं किया। शोक संतुप्त और आक्रोश से भरी अंजू अपने कमरे में जाकर किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति में विचार शून्य होने लगी थी। उसे याद आ रहे थे वे पुराने दिन जब उसने सबके विरोध के बावजूद यह अविवेकपूर्ण निर्णय लिया था। पिछला सारा समय एक चलचित्र के समान उसके सामने घूम गया।

अंजू ग्रेजुएशन की हुई लड़की जिसकी 3 साल पहले शादी हुई अपनी क्लास के सबसे खूबसूरत स्मार्ट दिलचस्प लड़के राकेश से। और यह शादी बिना एक दूसरे को पूरी तरह से जाने हुए हुई। अंजू का सामाजिक और पारिवारिक परिवेश स्तरीय था। नगर की सभ्रान्त उच्चवर्गीय लोगों की कॉलोनी में रहने वाले नौकरी पेशा माता-पिता, उच्च स्तरीय पढ़ाई करते हुए भाई और कुछ शिक्षित समृद्ध रिश्तेदार इन सबके बीच पली-बढ़ी अंजना पांडे और इधर राकेश मालवी जिसके पिता देहात में रहकर खेती-बाड़ी करते हुए साग सब्जी उगाने वाले समाज से संबंध रखते थे।

राकेश मालवी जो अपने माता-पिता का इकलौता बेटा था। जिसकी शादी को लेकर माता-पिता ने कई सपने पाल रखे थे और अपने समाज के एक संपन्न परिवार की लड़की सोच रखी थी। जिससे शादी करने के बाद दहेज तो मिलना ही था किंतु समाज में और अपने सब्जी भाजी के व्यवसाय में भी सहायता मिलने की उम्मीद थी। वैसे ही अंजू के माता-पिता ने भी किसी पढ़े-लिखे एग्जीक्यूटिव लड़के की कल्पना कर रखी थी अपने दामाद के रूप में, जिससे अंजू की शादी करने के बाद अपनी कॉलोनी में अपने परिवार में और अपने समाज में रुतबा और बड़ा हो जाना था। ऐसा कई बार होता है कि किसी एक ही घटना

या एक ही पात्र को लेकर उसे जुड़े हुए अन्य कई पात्र अलग-अलग अपनी मंशा अनुसार अपने स्वभाव अनुसार अपेक्षाएं पाल लेते हैं जो पूरी होना संभव नहीं होता। अपने परिवारों की महत्वाकांक्षाओं और भविष्य की आशाओं से अनभिज्ञ ग्रेजुएशन के अंतिम वर्ष में साथ साथ पढ़ने वाले अंजना और राकेश एक दूसरे को अपना जीवन साथी मान चुके थे। बिना यह सोचे कि विषम जीवन स्तर, विभिन्नता लिए हुए सामाजिक परिवेश और असमान आर्थिक स्थिति के बावजूद किसी को अपना जीवनसाथी बनाना सहज और आनंददायक कैसे होगा? बल्कि यह नई समस्याओं को जन्म लेगा। ये नादान पागल प्रेमी जो प्यार मोहब्बत से भरी हुई रोमांटिक फिल्मों को देख देखकर उपन्यास और किताबों में प्यार मोहब्बत के किस्से पढ़ पढ़ कर एक दूसरे के आकर्षण में बंधे हुए इन सारी दुनियादारी की बातों को व्यर्थ मानते थे। उनका यह विचार था कि हमें परिवार के व्यवसाय से क्या लेना देना। हमें समाज और हमारे परिवारों के परिवेश से कुछ मतलब नहीं है। हमें हमारा भविष्य खुद बनाना है। हमारा जीवन तो हमारा है। दोनों पढ़ेंगे लिखेंगे नौकरी करेंगे शानदार और मस्त जीवन बिताएंगे। यही कुछ विचारधारा राकेश और अंजू की भी थी। उनकी प्यार मोहब्बत के रिश्ते वाली इन हरकतों को उनके मित्र मंडली में भी पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता था। उन्हें एक आइकॉन के रूप में, मेड फॉर ईच अदर, लवली कपल के रूप में प्रसिद्धी मिली हुई थी। उन दोनों की पारिवारिक, सामाजिक स्थितियों में कितना अंतर था ये उन दोनों ने कभी नहीं सोचा था। राकेश तो एक पुरुष था उसे क्या सोचना था हालांकि उसे ही मुख्य रूप से सोचना था इसके बारे में। लेकिन अंजना जिसे एक स्त्री के नाते आने वाले समय में अपनी पारिवारिक सामाजिक परम्पराएं दिनचर्या और भविष्य की रुकावटों के बारे में गंभीरता से सोचना था उसने भी कुछ नहीं सोचा था। ना ही राकेश के बारे में कुछ तलाश भी किया था कि राकेश की पारिवारिक पृष्ठभूमि कैसी है? उसके माता पिता उसकी भाई-बहन उसके परिवार के सदस्य या उसके रिश्तेदारों का आर्थिक और शैक्षणिक स्तर क्या है? उनकी सोच विचार और मान्यताएं क्या हैं? इन महत्वपूर्ण बातों पर गौर किए बिना एक दूसरे के सौंदर्य से मोहित उम्र के पागलपन से उद्वेलित दोनों युवा एक दूसरे के जीवन साथी बनने का पक्का निश्चय कर चुके थे।

और फिर एक दिन ऐसे ही जोश खरोश में मौका पाकर अपने कुछ मित्रों की सहायता से घर से गायब हो गए। मंदिर में जाकर शादी कर ली। पुलिस एवं न्यायालय को आवश्यक प्रक्रिया करते हुए आवेदन दे दिया गया और दोस्तों के यहां जाकर छुप गए। दोनों परिवारों में हड़कंप मचा। अंजू के परिवार माता पिता और भाई लोक लाज के सर्वोच्च बिंदु की चिंता करते हुए बेटी के भविष्य के बारे में संशय रखते हुए बिना हल्ले गुल्ले के गुपचुप अपनी बेटी की खोज में लगे रहे। उससे कुछ

विपरीत समाज में अपनी नाक कट जाने, मनचाहा समझी ना पाने और उसके एवज में आर्थिक नुकसान भी होने के कारण जबरदस्त गुस्से और आक्रोश में खुले रूप से अंजू के परिवार को गालियां देते हुए अपने बेटे को खोज रहा था मालवी परिवार।

दो महीने की लगातार खोजबीन के बाद भी सुदूर अपने एक पारिवारिक मित्र के यहाँ गुपचुप रहते हुए राकेश व अंजना परिवार से बचे रहे। इस बीच दोनों परिवारों के मामा एवं काका और अन्य हितेषियों द्वारा दोनों को समझा-बुझाकर इस रिश्ते को स्वीकार करने और उन्हें वापस बुलाने के प्रयास जारी रहे। और अंततः बच्चों के प्रेम एवं कुछ समाज में देखे हुए अन्य उदाहरणों को देखते हुए अंजू के माता पिता और भाई ने एक मौन विरोध और असहमति मन में रखते हुए अपने आप को तटस्थ कर लिया। वहीं राकेश मालवी के पिता जगन्नाथ मालवी ने मध्यस्थों के द्वारा बेटे बहू को यह संदेश भिजवाया कि वे एक शर्त पर बेटे बहू को स्वीकार कर सकते हैं कि उन्हें उनके परिवार, समाज के कायदे कानून से घर में रहना पड़ेगा। घरवालों की, परिवार की और रिश्तेदारों की इज्जत करना पड़ेगी। घर के मुखिया की सारी बातें मानना होगी। दो महीने की लगातार मशकूत से निराश होते नव युगल को यह संदेश भी प्राणवायु के समान लगा और दोनों भावुक होते हुए परिवार में चले आए। सास-ससुर से, माता-पिता से क्षमा मांगते हुए उनकी सारी बातें मानने की सहमति दी और इनका जीवन शुरू हुआ। कॉलेज लाइफ के दौरान राकेश के साथ प्रेम पतंग उड़ाते हुए प्यार मोहब्बत के नगमे गाते हुए अंजू बहुत खुश थी। कई कई सपने देख रही थी। शादी के बाद ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे ऐसे रहेंगे, वैसे रहेंगे, स्वच्छंद जीवन जिएंगे, अपने हिसाब से रहेंगे। कई कई बार जब वह रुठेगी तो उसका पति उसका प्रेमी उसे मनाएगा उसकी मनुहार करेगा। अपनी कमाई से उपलब्ध शानदार संसाधनों के द्वारा एक बढ़िया जीवन जीते हुए, और उसके बाद होने वाले अपने बच्चों को भी शानदार शिक्षा देते हुए अपने उद्देश्य में सफल होंगे ऐसा ही कुछ सोचा था अंजू ने। लेकिन इन सारे विचारों को 2 महीने की भटकन में विस्मृत कर चुकी अंजू अपने कमजोर और निराश होते दिल में कुछ भय महसूस करने लगी थी। राकेश के पिता की शर्त स्वीकार करते हुए उसके दिमाग में यह आशंका प्रबल हो चुकी थी कि शायद अब वह उस तरह के स्वतंत्र स्वच्छंद अलमस्त जीवन सरलता से नहीं जी सके। और हुआ भी यही अपने घर आने के बाद दो-तीन दिन तो परिवार का वातावरण अच्छा बना रहा। विवाह की सारी औपचारिकताएं निभाई गई। यद्यपि राकेश के माता पिता को कोई उत्साह कोई दिलचस्पी नहीं थी। अंजू के माता पिता और भाई ने भी अत्यंत उदासीन रहते हुए नाम मात्र की उपस्थिति दर्शाई। इस अत्यंत सीमित छोटे से विवाह समारोह में शामिल होने के लिए राकेश के समाज के, मोहल्ले के तथा परिवार के कुछ रिश्तेदारों को बुलाया

गया था।

इस अक्सर पर जींस टॉप और सलवार सूट पहनने वाली, खुले बाल रखने वाली अलमस्त युवा लड़की अंजू जो अब मालवी परिवार की बहू के रूप में बदल चुकी थी, अब नाक तक घुंघट निकाले जगन्नाथ मालवी के कच्चे पक्के घर में बैठे मोहल्ले की महिलाओं की मुंह दिखाई की रस्म का सामना कर रही थी। तीन-चार दिन बीतने के बाद ही एक दिन सासू रामवती ने दोपहर में घर के सारे कायदे कानून अंजू को समझाते हुए उसे सारे कार्य की जवाबदारी समझला दी। घर के चौके चूल्हे के काम के अलावा समय-समय पर अपने खेतों में जाकर खेती का काम करना बताया। यह भी बताया कि उसे घर से बाहर निकलते समय घुंघट रखना आवश्यक है। हमेशा साड़ी पहनना है सलवार सूट पहनने की कभी सोचना भी मत। पति और घर के सदस्यों के अलावा बाहर से आने वाले अनजान लोगों से किसी भी तरह की बातें नहीं करना है। सासूजी का एक-एक वाक्य अंजू के दिल पर हथौड़े की तरह लग रहा था। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि क्या उसे इस तरह से रहना पड़ेगा? बेचैन उद्वेलित अंजू ने उसी रात को राकेश को सासु जी द्वारा बताई गई सारी बातें गुस्से और अफसोस के साथ बता डाली। लेकिन राकेश ने ज्यादा गंभीर न होते हुए अंजू को यही समझाया कि तुम परेशान ना हो तुम्हें ऐसा सब कुछ नहीं करना पड़ेगा। लेकिन प्लीज थोड़े दिन तो हमें यह सब सहन करना ही पड़ेगा। अभी मम्मी पापा जी दोनों गुस्से में हैं और तुम्हें जो बताया वह हमारे परिवार की हमारे समाज की परंपराएं हैं उन्हें हम धीरे-धीरे ही बदल पाएंगे प्लीज मेरे लिए तुम मेरे लिए कुछ सहन करो।

कुछ नहीं बोल पाई अंजू, मन मसोस कर रह गई। उसके सारे अरमान, उसके सारे सपने, सुंदर सुखद भविष्य की तस्वीर धुंधली होने लगी थी। फिर भी उसने अपने मन को समझा कर घर के सारे कार्य करना शुरू किया। साड़ी पहनकर घुंघट में रहना, धीमे बोलना, बाहर नहीं निकलना इत्यादि बातें शुरू की। इसके बावजूद सासु बहू का जो रिश्ता होता है बड़ा कठिन होता है। सासू जी निरंतर उसके कार्यों में मीन मेख निकालती रहती थी। उसे नए-नए निर्देश भी देती रहती थी। वह कदाचित्त उस सिद्धांत को मानने वाली थी कि बहू को कभी सिर पर नहीं बिठाना चाहिए या ज्यादा हंसी मजाक नहीं करना चाहिए। बहू को टोकते भी रहना चाहिए तभी बहू आज्ञाकारी बनी रहेगी।

एक दो बार उसे खेत पर ले जाकर अंजू से खेती संबंधी कुछ काम भी करवाया गया। अंजू को ये बातें ज़रा भी नहीं जमी थी और उसने बातों बातों में सासू जी को कह भी दिया था कि मम्मी जी मैं ये खेती के काम नहीं कर पाऊंगी। बहुत नाराज हुई थी सासु यह सुनकर। शाम को राकेश को और पति को भी रामवती ने भरपूर मिर्च मसाला लगाकर यह बात बताई और फिर तीनों के द्वारा

संयुक्त रूप से घोषित किया गया कि चूँकि परिवार में खेती बाड़ी है इसलिए परिवार के सदस्यों को भी खेती का काम करना पड़ेगा।

शादी को 2 साल होने जा रहे थे पति-पत्नी का आपसी आकर्षण या तथाकथित प्यार तो दुनियादारी की एक आवश्यक शर्त थी और उसी का परिणाम एक प्यारी सी बच्ची के रूप में ईश्वरीय उपहार प्राप्त हुआ था अंजू को। यह वह अवसर था जब अंजू अपने माता-पिता या भाई के संपर्क में आ सकती थी। उनकी नाराजगी दूर हो सकती थी लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। कुछ अपने स्तरीय रिश्तेदारों से संकोच और कुछ सामाजिक हीनता बोध के चलते, साथ ही राकेश के परिवार वालों द्वारा भी उचित व्यवहार न करने के कारण माता-पिता और भाई द्वारा ऐसे अवसर पर भी कोई संपर्क नहीं किया गया। अंजू की पुत्री का जन्म वही देहाती मकान में सासू जी की देखरेख में अति सामान्य ढंग से हुआ और कुछ ही दिन आराम करने के बाद उसे फिर दैनिक कार्यों में जोत दिया गया। अंजू के लिए इससे ज्यादा दुखदाई यह था कि यह सारी विपरीत और कष्टदायक स्थितियों को देखते हुए भी राकेश ज्यादा तटस्थ और उसके प्रति उदासीनता का भाव दिखता था। अंजू को याद आते थे वेदिन जब राकेश बड़े-बड़े वादे करता था। आसमान से तारे तोड़ लाने की बातें करता था अपनी जान लुटा देने की बात करता था। लेकिन अब यहाँ वह चुप था। एक आशा जो अंजू को अपने सपने पूरे होने की आस बंधाती थी जो अभी भी उसे सुखद भविष्य की कल्पना करने को प्रेरित करती थी की यदि उसकी नौकरी लग जाती है तो वह कुछ हद तक अपने अनुसार रह सकेगी लेकिन उसकी इस आशा पर भी एक दिन तुषारापात कर दिया गया था, जब उसके ससुर जी और सासू द्वारा उसे यह बताया गया कि हमारे परिवार में बहुत नौकरी नहीं करती। अपने घर में ही खेती बाड़ी काबहुत काम है और सब्जी फल फ्रूट का भी व्यापार है तो नौकरी की क्या जरूरत?

राकेश को भी अभी तक कोई नौकरी नहीं मिल पाई थी। परिवार की पर्याप्त खेती-बड़ी होने से तथा सब्जी मंडी में लगाई जाने वाली सब्जी और फल फ्रूट की दुकान पर भी समय देने से इतनी व्यस्तता रहती थी कि राकेश भी नौकरी के लिए विशेष प्रयास नहीं कर पाया। यद्यपि इन विपरीत वातावरण में यदा कदा राकेश के दिल में उठने वाली अंजू के प्रति प्रेम और आकर्षक की भावना हल्की-फुल्की नेह की बारिश के रूप में अंजू को मिलती-रहती थी लेकिन अंजू को ऐसा लगता था कि वह युगों की प्यासी विशाल अनंत आकाश से ऊँचे सपने देखने वाली, विशाल धरती पर स्वच्छंद विचरण करने की इच्छा रखने वाली कोये क्षणिकओस की बूंदों के समान शीतलता कभी भी संतुष्ट नहीं कर पायेगी।

उसे याद आए कॉलेज के बगल में बने बगीचे में बिताए वो दिन जब किसी दोपहर में अंजू ने राकेश की बांहों में बड़ा सुकून पाते हुए पृष्ठा था कि उसके परिवार

का क्या व्यवसाय है ? क्या कामकाज है ? परिवार के लोग कैसे हैं ? तब राकेश ने बड़ी कुशलता से सिर्फ यह बताया था कि उसका फल फ्रूट का और सब्जियों का होलसेल का बिजनेस है। उसके घर में बहुत खेती बाड़ी है, नौकर चाकर है और बहुत आराम का माहोल है।

अंजू की एक दो सहेलियों ने दबे स्वरों में गोलमाल ढंग से यह संकेत दिए थे अंजू को कि राकेश माली परिवार का समाज का होनहार लड़का जरूर है लेकिन उसके घर परिवार का वातावरण देहाती है। घर में खेती बाड़ी है इसके बावजूद अंजू ने इन बातों पर गौर करना जरा भी जरूरी नहीं समझा। व्यवसाय कोई भी हो उसमें कोई समस्या नहीं होती है। खेती-बाड़ी होना भी संपन्नता का सूचक होता है। लेकिन आज उसका यह निष्कर्ष था की व्यवसाय और खेती-बाड़ी जिस व्यक्ति या परिवार के पास हो, उसकी वैचारिक सोच उसकी धारणाएं और मान्यताएं भी उसी व्यवसाय और समाज से प्रभावित होती है। ऐसे में वह अपने दिमाग में आए उन अनुचित विचारों को भी नहीं रोक सकी कि यदि उसका जीवन साथी किसी अच्छे विभाग में किसी अच्छे पद पर नौकरी कर रहा होता तो उसकी दिनचर्या उसका खान-पान और उसकी वेशभूषा कुछ अलग ही होती। उसका स्वयं का रहन-सहन और भविष्य में आने वाले बच्चों के लालन पालन का स्तर भी बहुत ऊंचा होता।

किसी विवाहित स्त्री के मन में अपने वर्तमान परिवार और पति के प्रति निराशा उत्पन्न होकर ऐसे विचार आना एक खतरनाक दुस्साहसी घटना माना जाएगा, लेकिन कहा गया है कि मन को रोकना बड़े-बड़े संयमित लोगों के बस की भी बात नहीं होती है। दिन भर के 24 घंटे में कभी कभी अंजू के मन में यह विश्लेषण आता रहता और वह अपने निर्णय के प्रति दुखी या अफसोसमहसूस करती।

अचानक नीचे से आती आवाजों से अंजू की विचार यात्रा बाधित हुई। वह चौंक कर उठी। बाहर नजर गई, शाम का धुंधलका फैलने लगा था। पति राकेश जो कहीं बाहर गांव गया था पपीता के सौदे के लिए वह आ चुका था। ससुर जी भी आ चुके थे और खाना खाने के पहले ही सासु ने रोना धोना करते हुए बहू के द्वारा की गई बेईज्जती, उसके आदेश की अवहेलना और मामा के यहां काम करने जाने से इनकार इत्यादि बातों को बता कर वातावरण को अत्यंत तनाव पूर्ण बना दिया था। अंजू को कुछ आशा थी कि राकेश उसका पक्ष लेगा, उसकी माँ को शांत करेगा और समझाएगा कि माँ इस पढ़ी-लिखी बहू को कम से कम ऐसे कामों के लिए नहीं भेजा जा सकता। लेकिन हुआ उसका उल्टा ही। पति ने भी अपने माँ और पिता का साथ देते हुए सासु की बात नहीं मानने के लिए उसे डांटा, उस पर गुस्सा किया और भविष्य के लिए ऐसी बदतमीजी ना करने की चेतावनी भी दे डाली। और तभी उसकी सासू रामवती के चतुर दिमाग में एक तरीका अंजू के मनोबल को गिराने के लिए आया जो कि बहुत चौंकाने

वाला था। काफी कहासुनी के बाद रामवती ने एक नया पत्ता फेंकते हुए कहा कि ठीक है इसको खेतों में जाने में शर्म आती है, दूसरों के घर हल्की-फुल्की मजदूरी करने में शर्म आती है तो वहाँ मैं जाऊंगी मैं खेती का सब काम सम्हाल लूंगी लेकिन फिर इसको हमारे सब्जी बाजार में लगने वाली सब्जी की दुकान पर जाना पड़ेगा। और सब्जी के व्यापार करने में तो इसको कोई शर्म नहीं आना चाहिए। अंजू चौकी। स्तब्ध रह गई यह सुनकर कि उसे सब्जी की दुकान पर बिठाया जाएगा। उच्च वर्गीय सुशिक्षित और सभ्य परिवार से आने वाली बहू को सब्जी बाजार में अन्य कई कई देहाती अनपढ़ सब्जी बेचने वालों के समान दुकान पर बैठकर सब्जी बेचना पड़ेगी ? वह नहीं जाएगी। उसने बहुत आक्रोश युक्त स्वरों में जवाब दिया और अपने कमरे में चली गई। दिलो दिमाग में उठाते तूफान के साथ उसकी आँखों से आंसुओं की धार बह रही थी। रात्रि को पति के द्वारा समझाने और सारे घटनाक्रम पर सोच विचार करती हुई अंजू बहुत अवसाद में आ चुकी थी उसकी वैचारिक शक्ति क्षीण हो चली थी उसे इन स्थितियों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था कि उसे सब्जी बाजार में जहाँ शहर के सारे लोग सब्जियां लेने आते हैं, उसके परिवार के लोग उसके कॉलेज के समय की सहेलियां उसके मोहल्ले की परिचित लोग सभी सब्जियां लेने तो सब्जी बाजार में आते ही हैं वहाँ वह सब्जी की दुकान पर बैठकर सब्जी बेचेगी इससे निकृष्ट इससे शर्मनाक स्थिति क्या हो सकती है ? अंजू कुछ तय ही नहीं कर पा रही थी कि क्या उचित है और क्या अनुचित ? वह किस्से पूछे कि उसे क्या करना चाहिए ? कोई उसे सलाह देने वाला सांत्वना देने वाला दूर दूर तक नहीं था सारे अपने जिनसे वह मुखर विरोध कर इस प्यार मोहब्बत के छलावे में आकर मुखरता कर बैठी थी अब उन सब से कैसे कुछ सहायता की अपेक्षा कर सकती थी। उसने राकेश के पैर पकड़ लिए रो-रो कर गुहार लगाई कि “उसे इस अपमान से बचा ले। मैं यह कभी नहीं कर पाऊंगी” लेकिन पति राकेश द्वारा कोई सांत्वना नहीं दी गई। सिर्फ आश्वासन जरूर दिया गया कि कुछ समय सब्जी की दुकान पर चले जाना उसके बाद पापा से कह कर हम यह बात खत्म करवा लेंगे। राकेश ने इस आश्वासन के साथ यह समझाईश भी दी कि “कोई भी व्यवसाय करने में शर्म की बात नहीं होती। हम हमारे घर की सब्जियां बेच रहे हैं कोई भीख नहीं मांग रहे हैं। और कुछ दिन में हम उपाय निकालेंगे। अभी तो जाना शुरू करो।

स्वयं को असहाय महसूस करते हुए, अपनी मासूम बच्ची को निहारती अंजू इतनी थक चुकी थी कि विलाप करते हुए न जाने कब सो गई। सुबह होते ही एक ठेले गाड़ी में विभिन्न प्रकार की सब्जियों के टोपले रखते हुए राकेश ने उसके साथ जाकर सब्जी बाजार में निर्धारित स्थान पर सब्जियां सजाकर उसे आवश्यक जानकारियां दी। सब्जियों के भाव समझाए साथ आई सासू ने घर से निकलते हुए ही यह चेतावनी भी दे दी थी कि सही ढंग से

सही तरीके से व्यवस्थित दुकान संभालना है अन्यथा ठीक नहीं होगा। राकेश और उसकी सासू घर जा चुके थे और अब सब्जी बाजार में सब्जी की दुकान पर एक ग्रेजुएट महिला संपन्न जीवन स्तर से जुड़ी हुई शहर के शिक्षित समृद्ध परिवार की बेटी अपने ही शहर में बड़े संकोच से दुकान पर आने जाने वाले ग्राहकों को सब्जी के भाव बता रही थी। अंजू को याद आया कुछ किताबों में उसने पढ़ा था कि कई बार विषम स्थितियों से घिरा मनुष्य दुखी और लाचार होकर ईश्वर से प्रार्थना करता है ऐसे में कि या तो आसमान टूट पड़े या प्रलय आ जाए या ऐसा कुछ हो कि वह स्वयं नष्ट हो जाए। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ उसके विलाप उसके करुणा से पूर्ण हाहाकार का भी कुछ परिणाम नहीं हुआ। जैसे जैसे दिन पूरा हुआ शाम हुई और अंजू वापस घर आई।

दिन भर में सब्जी बेचते कुछ परिचित लोगों की उस पर नजर भी पड़ी। बड़ी कुशलता से अंजू ने अपना चेहरा छुपाने की कोशिश की। फिर अगले दूसरे दिन, फिर तीसरे दिन उसे ऐसी ही अप्रिय स्थितियों का सामना करना पड़ा। अपनी मासूम बच्ची को गोद में लिए अपनी आँखें और चेहरे को नीचे झुकाए कुछ निकटतम परिचित लोगों का सामना भी करना पड़ा उसे।

अंजू ने पाया कि उसके परिचित उससे दोनों तरह के व्यवहार कर रहे थे कुछ लोग जहाँ अंजू को शर्मिंदा होने से बचने के लिए किसी भी प्रकार की पूछताछ तो दूर उसकी दुकान पर ठहर भी नहीं पा रहे थे। अपना रास्ता बदलते हुए बच कर जा रहे थे तो वहीं कुछ भावुक लोग रुक कर उसके प्रति जिज्ञासा और सहानुभूति भी दर्शा रहे थे। इन दोनों स्थितियों का सामना करती अंजू भगवान से प्रार्थना करती थी कि यदि अभी धरती फट पड़े तो वह उसमें समा जाए। लेकिन धरती फटना तो बहुत दूर की बात थी उसके पति और उसकी सासू के दिलों दिमाग में भी इस तरह का कोई विचार नहीं आया कि वह अंजू के साथ कुछ अन्याय कर रहे हैं।

राकेश ने उसे एक बार कुछ दिलासा जरूर दिया कि मैं एक हफ्ते बाद मम्मी से बात करूंगा। इसी बीच अंजू को सब्जी की दुकान पर बैठने की बात परिचित लोगों के द्वारा घुमते घुमते उसकी कालोनी और उसके घर तक भी पहुँच चुकी थी। उसकी मम्मी पापा और भाई यह सब सुनते ही स्तब्ध रह गए। बहुत दुखी क्रोधित भी हुए अंजू की माँ तो अवसाद की स्थिति में आ गई। इसके बावजूद वे सब विचलित थे कि अब क्या किया जाना चाहिए।

नवाँ या दसवाँ दिन था। सब्जी की दुकान पर बैठे सर झुकाए अपनी बच्ची को दूध पिला रही अंजू ने नम आँखों से ग्राहक की आवाज सुनकर अपना चेहरा उठाया। चेहरा उठाते हुए उसने जो देखा तो देखते ही रह गई.... उसकी गोद से उसकी बच्ची फिसल गई उसका शरीर निष्क्रिय होने लगा उसकी आँखें स्थिर हो चुकी थी अंजू को लगा सारी कायनात ही थम गई है। वह देख रही थी

अपनी दुकान के सामने हाथ में सब्जी का झूला लिए हुए पत्थर की तरह खड़ी हुई माँ को वह हड़बड़ा गई। तभी माँ ने अपने चारों ओर देखते हुए अंजू के कंधे पर हाथ रखा और कहा कि सामने के शिव मंदिर में पाँचमिनट के लिए चल, आज मुझे कुछ बात करना है तुझसे। माँ को शिव मंदिर की ओर जाते देख अपने होंश हवास खोए हुए अंजू ने अपनी बच्ची को गोद में लिया, पड़ोसी को दुकान की तरफ ध्यान देने का बोला और दौड़ती हुई शिव मंदिर की तरफ पहुंची। दोपहर का समय था शिव मंदिर के परिक्रमा वाले पिछले हिस्से में खड़ी माँ के सामने जैसे ही अंजू पहुंची। कुछ क्षण तो यह रहा कि पत्थर के प्रस्तर खण्डों से निर्मित मंदिर की परिक्रमा में पत्थर की बनी दीवारों और छत के बीच कोई दो पत्थर की मूर्तियाँ एक दूसरे के सामने खड़ी है निस्तब्ध, मौन, और अविचलित। लेकिन कुछ ही क्षणों में उन पाषाण मूर्तियों में जबरदस्त हरकत हुई और दोनों एक दूसरे से लिपट गई। अंजू ने अपनी माँ को कसकर पकड़ लिया इस आशा में कि अब मैं माँ को कभी नहीं छोड़ूंगी। और प्रति उत्तर में उसे माँ का एक हाथ उसके सिर पर तो दूसरा हाथ उसकी पीठ पर महसूस हुआ। और तभी दोनों का रुदन प्रबल वेग से फूट पड़ा। बिना किसी अवरोध के बिना किसी लज्जा के या संकोच के उन्मुक्त रूप से दहाड़े मार कर रोती हुई अपनी माँ और दूसरी महिला को देखकर नन्ही बच्ची भी चीत्कार कर उठी।

बड़ी देर तक बिना कुछ बोले रुदन करते हुए इन दुखी प्राणियों का रुदन दुनिया के किसी व्यक्ति ने सुना या नहीं सुना होगा किंतु जिसे सुनना चाहिए था उस दुनिया के मालिक ने, विश्व निर्माता ने भगवान भोलेनाथ ने सुना। शिव मंदिर की परिक्रमा के गलियारों ने सुना। संभवतः उस मंदिर के पाषाण भी दुखायारी अंजू के बहते आंसुओं को देख कर पसीज गए होंगे।

कुछ क्षणों के बाद अंजू ने बोलने की कोशिश की। लेकिन बड़ी मुश्किल से ही वह बोल पाई “माँ मुझे माफ कर दो, मैंने बहुत बड़ी गलती की है और उसकी बहुत सजा भीपाई है। मैं बहुत दुखी हूँ माँ... मुझे इस संकट से बाहर निकालो... फिर ज़ोरों से रोपड़ी अंजू। भावुक होती माँ रंधे गले से कुछ भी नहीं बोल पाई, बल्कि उसने अंजू के होठों पर हाथ रखकर उसे भी बोलने से मना किया। उसे पुचकारा। उसके सिर पर हाथ फेरा और उसकी पीठ भी थपथपाई। यह सारे उपक्रम एक माँ की ओर से अपनी बेटी को दी जाने वाली साहस पूर्ण संवेदना थी। कोई आश्वासन नहीं बल्कि एक अभयदान था जो दुनिया की हर माँ अपने बच्चों को देती है। माँ जो अपने बच्चों के लिए, उनकी सुरक्षा, उनके लालन-पालन के लिए शायद ईश्वर से भी टकरा सकती है।

कुछ क्षणों बाद उसे माँ के बोल सुनाई दिये। मेरी बेटी अभी कुछ मत बोल। कुछ मत सोच, मैं जो कह रही हूँ उसे सुन। कल सुबह 9:00 बजे तुझे अपने घर से अपनी बच्ची को लेकर कुछ पहनने के कपड़े लेकर निकलना

है, यह कहकर कि मुझे मेरी माँ से मिलने जाना है। और हाँ यह याद रखना कि किसी भी बेटी को अपनी माँ से, अपने परिवार से मिलने के लिए दुनिया की कोई भी ताकत या कोई कानून कोई रिश्ता अड़चन नहीं बन सकता। बस उसके बाद क्या करना है यह मैं देख रही हूँ। मैं तेरी माँ हूँ और किसी एक माँ के होते हुए उसकी बेटी इतना दुख नहीं पा सकती। अंजू ने फिर कुछ कहना चाहा किंतु माँने उसकी पीठ थपथपाते हुए उसे अपने सीने से चिपका कर चुप कर दिया और फिर दोहराया कि अपने आंसू पोंछो और अभी चलो दुकान पर। शाम को ही तैयारी कर लेना सुबह निकलने की।

माँ जा चुकी थी। और अंजू वापस दुकान पर आ चुकी थी। माँ के विश्वास से भरे अभयदान से अंजू में एक नवीन शक्ति का संचार होने लगा था। अब उसे लगने लगा था कि वह किसी भी अत्याचार का विरोध कर सकती है। उसे विरोध में खड़ा होना भी चाहिए और उसे भी प्रश्न करने का अधिकार है।

शाम हुई दुकान का सामान समेट कर घर पहुंची अंजू ने चौके का काम निपटाकर कमरे में आकर अपनी बिटिया के कपड़े और स्वयं के कुछ कपड़े अटैची में रखे। राकेश यह तैयारी करते देखकर चौका उसने पूछा कि कहाँ की तैयारी हो रही है? उसे चौंक जाना पड़ा जब उसके प्रश्न के जवाब में अंजू का सपाट सशक्त और निर्भीक उत्तर गुंजा “कल मैं मेरे माता-पिता से मिलने जा रही हूँ” “अरे ऐसे कैसे जा रही हो? पहले मम्मी से पूछो पापा से पूछो। अचानक कैसे याद आ गई घर की।

अंजू ने कुछ भी जवाब नहीं दिया सिर्फ यह कहकर बात खतम की कि मैं कल जा रही हूँ। उसके चेहरे को, उसके विचारों को पढ़ते हुए राकेश ने नीचे जाकर अपने माता-पिता को बताया। अंजू का निर्णय सुनकर वह दोनों भी गुस्सा हुए। उसे खरी खोटी सुनाई। उसे चेतावनी भी दी कि “यदि इस तरह से जाएगी तो तुझे वापस नहीं आने दिया जाएगा” लेकिन अंजू निश्चित थी। उसे अब अपने आप पर भरोसा था कि वह इनका सामना कर सकेगी। उसने शांत और दृढ़ स्वर में अपने निर्णय को दोहराते हुए कहा कि “मुझे अपने मातापिता से मिलने जाने में कोई अड़चन आने पर वह पुलिस की सहायता लेने में ज़रा भी देर नहीं करेगी।”

दुनिया में यह देखा गया है कि अन्याय और अत्याचार तभी तक धूम-धड़ाके से और गर्जना से दलबल सहित अपना पराक्रम बताते हैं जब तक पीड़ित व्यक्ति उसके विरोध में खड़ा नहीं होता। अधर्म को अत्याचार को या अन्याय को जैसे ही कहीं से चेतावनी मिलना शुरू होती है वह कमजोर होने लगता है। राकेश और माता-पिता तीनों के विचार-विमर्श से अंततः यही तय हुआ कि ठीक है शादी को बहुत दिन हो गए हैं वह अपने माता-पिता से मिलने जा रही है इसमें कुछ गलत नहीं है उसको जाने दो दो-चार दिन रहकर वापस आ जायेगी। और दूसरे दिन सुबह ऑटो रिक्शा में बैठी बरसों के बाद आनंद की

भावनाओं से भरे हुए अंजू चल पड़ी उस स्वर्गिक स्थान की और जिसे पीहर कहते हैं, जिसे अपने मातापिता का घर कहते हैं जहाँ हर उम्र का सदस्य एक संतोष एक प्रसन्नता एक खुशी महसूस करता है। घर की ओर जा रहे ऑटो में बैठी अंजू इस बात से आश्चर्यचकित थी कि कैसे उसने पिछले चार-पांच साल उस नर्क में रहते हुए निकाल दीये? एक बार भी खुलकर विरोध नहीं कर पाई पढ़ी-लिखी शिक्षित होने के बावजूद अपनी इच्छा और अपने विचारों से ससुराल पक्ष वालों को सहमत नहीं करा पाई? इन सबसे बढ़कर घोर आश्चर्य उसे इस बात से था कि कैसे देवता तुल्य अपने माता-पिता से और अपने भाई से विरोध करके प्यार के छलावे में आ गई। संकोचवश इतने दिनों तक अपने परिवार से नहीं मिलकर उसने कितना कुछ खो दिया।

सिर्फ एक बिना सोचे समझे निर्णय के कारण उसे कितना दुःख भोगना पड़ा। क्या इसे ही प्यार कहते हैं? क्या यही मोहब्बत होती है कि सारे अपने परिवार वालों के सुख दुख का ध्यान रखें बिना सारे समाज की विषमताओं को सोचे बिना आगे बढ़ जाए अपने स्वार्थ के आगे अपने वालों का सब कुछ बिसरा दें? प्यार मोहब्बत के लुभावने पागलपन में पड़कर अपने से विषम भिन्न समाज के दोस्त से शादी कर उसने क्या पाया? अंजू और राकेश ही नहीं, दोनों परिवारों ने भी अपने बच्चों से क्या सुख पाया? क्या यह प्रेम विवाह का निर्णय अत्यंत मूर्खतापूर्ण निर्णय नहीं था? अंजू समझ रही थी कि किसी हम उम्र से प्यार करना दिललगाना बुरा नहीं है किसी को चाहना भी बुरा नहीं है और इस आधुनिक समय में किसी को अपने जीवन साथी के लिए चुनना भी शायद गलत ना हो लेकिन इस चुनाव के लिए माता-पिता या परिवार पर विश्वास न करना उनकी समझाईश पर गौर नहीं करना, खुद के निर्णय को ही सर्वोपरि रखना वह तो बिल्कुल उचित नहीं माना जा सकता। जीवन साथी के चुनाव जैसे महत्वपूर्ण विषय को बिना गंभीरता से हल्के फुल्के लेना, केवल बाहरी सुंदरता और आकर्षक स्वभाव को ही महत्व देना शायद गलत था। किसी के साथ अपना जीवन बिताने के लिए यह भी जरूरी है कि दोनों के आपसी स्वभाव और विचारधारा मिलती-जुलती होने के साथ ही दोनों परिवारों और दोनों के समाज का वैचारिक स्तर भी ज्यादा विभिन्नता वाला नहीं होना चाहिए। आर्थिक स्तर भी दोनों परिवारों का बहुत असमान नहीं होना चाहिए। यह बातें प्यार के आदर्शवादी रूप से तो मेल नहीं खाती हैं लेकिन व्यावहारिक जगत की यही मुख्य आवश्यकता है जिन्हें आज की युवा पीढ़ी नजरअंदाज कर देती है और बाद में दुख पाती है। अचानक ऑटो रुकने से अंजू विचारों से बाहर आई। घर आ गया था उसके मन में क्षणिक संकोच और शर्मकी अनुभूति हुई लेकिन इससे बढ़कर यह सुखद अहसास हुआ कि अब वह अपने माता-पिता के घर आ गई है। घर को थोड़ा सा सजाया गया था उसके लगा माता पिता और

भाई के अलावा उसके अंकल भी उसके स्वागत में आँगन में ही खड़े थे। ऑटो से उतरकर अंजू तेजी से घर के अंदर चली गई। माँ ने उसे गले से लगा लिया माँ से गले लगे रहने के बाद रोते हुए उसने पिता की ओर देखा। आकाश के समान विशाल हृदय उस पिता को जिसने उसके बचपन की हर इच्छा को पूरी करने में कभी भी देर नहीं की थी, और उसी पिता को जिसका उसने दिल दुखाया था अपने स्वार्थी प्यार के लिए। लिपट गई अपने पिता से अंजू और पिता के पांव पकड़ने की कोशिश करने लगी। मुझे माफ करो पापा, मैंने बहुत गलत किया है। लेकिन पिता ने उसे यह सब बोलने का ज्यादा मौका नहीं दिया उसे गले से लगा लिया।

अगले दो-तीन दिन तक तो सारा परिवार बहुत करुणाजनक स्थिति में रहा। अंजू की माँ ने अंजू को अपने कमरे से नहीं निकलने दिया उसका खानपान उसका उपचार एवं बातों के उत्साहजनक समझाई से उसे स्मृतिवान बनाया। इस बीच पिता और भाई द्वारा वकील के मार्फत राकेश मालवी पिता जगन्नाथ मालवी को तलाक के लिए नोटिस दिया जा चुका था। पुलिस थाने पर एक आवेदन भी दे दिया गया था संबंध विच्छेद का और भविष्य में किसी तरह की परेशानी ना हो इसके लिए। सामने मालवी परिवार को भी यह संदेश पहुंचा दिया गया था कि अब किसी भी स्थिति में यह संबंध जीवित नहीं रखा जा सकता है इसलिए जल्दी से जल्दी तलाक दिया जाना उचित होगा। इन प्रक्रियाओं के 15 दिन में निपटाने के बाद भाई और पिता ने रोजगार समाचार पात्र देखना शुरू किया और अंजू की शैक्षणिक योग्यता के अनुकूल दो-तीन विभागों में नौकरी के आवेदन प्रस्तुत कर दिए। अपने पूर्व निर्णय का पश्चाताप माता-पिता और भाई द्वारा समझाने से अंजू के दिमाग से धीरे धीरे दूर हो रहा था वह मान रही थी कि इस दुखद घटनाक्रम में राकेश के माता पिता की उतनी गलतियाँ नहीं थी लेकिन अंजू स्वयं और राकेश निश्चित रूप से प्यार मोहब्बत के तात्कालिक आकर्षण में विवेकहीन होकर अनुचित रास्ते पर चल पड़े थे। जिसे वे महान पवित्र पावन प्यार समझाते थे वह सिर्फ एक सौन्दर्य का आकर्षण और उस उम्र का मोहक प्रभाव से ज्यादा कुछ नहीं था। राकेश के परिवार वालों ने भी इस स्थिति को स्वीकार कर तलाक की कार्यवाही त्वरित निपटाने का विचार बना लिया था। रोजगार समाचार से प्राप्त जानकारी के आधार पर अंजू को शिक्षा विभाग में नौकरी मिल चुकी थी।

इस बीच अंजू के पिता ने अपने कालोनी के नजदीक एक अन्य कालोनी में अंजू के लिए एक फ्लेट की व्यवस्था भी कर दी थी। एक वर्ष पूरा होते होते अंजू अपने नए परिवेश में अपने नए निवास में और अपने नए जीवन पथ पर चल पड़ी थी उसे भूतकाल में लिए गए अपने अविवेकी निर्जणय का अफसोस अभी भी था और वो उस अफसोस को भुलाने के लिए उसके मन में यह इच्छा बार बार होती थी कि काश वह इस नई पीढ़ी को, युवा होते

लड़के लड़कियों को इस बात के लिए समझाईश दे सके कि फिल्मों और रोमांटिक किताबों से प्रभावित होकर अपने दोस्त की सुन्दरता और मोहक स्वभाव को ही सफल वैवाहिक जीवन की गारंटी नहीं मान ले बल्कि यह भी देखे कि इसके लिए दोनों के परिवार के सदस्यों का सामाजिक परिवेश दोनों परिवारों की जीवन चर्या, शैक्षणिक स्तर और आर्थिक स्तर भी ज्यादा भिन्नता वाला ना हो उनमें कुछ हद तक समानता होना भी जरूरी होता है जिन के अभाव में वह एक सुखमय जीवन शायद नहीं पा सके।

लघुकथा

वैदेही कोठारी

(स्वतंत्र पत्रकार एवं लेखिका)

48 राजस्व कॉलोनी रतलाम (मध्य प्रदेश)

ब्रांडेड स्वेटर

पुष्कर हॉल में तैयार होकर बैठ गये। कुछ देर इंतज़ार किया, घड़ी देख, घर वालों को आवाज़ लगाई, 'मैं तैयार हो गया हूँ, सभी जल्दी बाहर आ जाओ।'

कुछ ही देर में सात साल की मिन्की और उसकी माँ भी हॉल में आ जाती है।

'मिन्की दादा जी कहाँ है? अभी तक तैयार नहीं हुए क्या? रूम में देख कर आओ।'

इतने में दादा जी भी हाँथ में लाठी लिए हॉल में आ गए।

'पिताजी, ये कौनसे ज़माने का स्वेटर पहना है, पुष्कर ने खींचते हुए कहा।'

'क्या खराबी है, इस स्वेटर में बेटा?'

'मैं, कल ही आपके लिए ब्रांडेड स्वेटर लाया था, वह क्यों नहीं पहना!' नाराज होकर पुष्कर ने पूछा।

पुष्कर ने मिन्की की माँ से पूछा 'तुमने पिताजी को स्वेटर नहीं दिया था क्या?'

'अरे, बहू ने तो कल ही मुझे स्वेटर दे दिया था।'

'फिर वह ब्रांडेड स्वेटर क्यों नहीं पहना, ये स्वेटर बहुत पुराना है, बड़े लोगों की शादी पार्टी में जा रहे हैं, लोग क्या कहेंगे?' चिढ़ते हुए पुष्कर बोला।

तभी मोबाइल की घंटी बजी, पुष्कर बात करते हुए, पिताजी को पास में रखा कोट देते हुए इशारा किया, 'इसके ऊपर पहन लो। सभी कार में बैठ गए, बाबुजी ने अपनी दोनों बाँहे आपस में समेट आँख बंद कर ली, मिन्की ने दादा जी के हाँथ को हिलाते हुए पूछा, 'आपने वह नया वाला स्वेटर क्यों नहीं पहना दादा जी?' दादा जी मिन्की को गोद में बैठाते हुए बोले, 'जो प्रेम और गर्माहट इस स्वेटर में है, वह किसी भी ब्रांडेड स्वेटर में नहीं हो सकती मेरी मिन्की गुड़िया!'





गोवर्धन यादव

मुलताई (बैतुल)म.प्र.

कहानी

अजनबी

फुर्सत के क्षणों में दुनिया का सबसे जटिल और उबाऊ यदि कोई काम हो सकता है, तो वह है किसी का इन्तजार करना. इन्तजार करता आदमी ठीक उस सुप्त ज्वालामुखी की तरह होता है जिसके अन्दर विचारों का लावा धधकता रहता है, तरह-तरह की तरंगे-लहरें उठती रहती हैं और जब सहनशीलता की सारी हदें पार हो जाती है तो अचानक फूट पड़ता है.

इन दिनों अमरकांत के मन के अन्दर इन्तजार का एक ज्वालामुखी अन्दर ही अन्दर सुलग रहा था. वह हैरान और परेशान है कि सुनीता अब तक क्यों नहीं लौटी, जबकि उसे आज दस बजे घर पहुँच जाना चाहिए था. इस समय दिन के ग्यारह बज रहे हैं. इन्तजार करते-करते उसकी आँखें पथराने लगी और मन के आंगन में शंका और कुशंकाओं के जहरीले नाग, फ़न उठाए बिलबिलाने लगे थे. जाने से पूर्व उसने कहा भी था कि एस.एम.टी. की बस से रवाना होगी, जो ठीक पौने दस बजे यहाँ पहुँच जाती है. कहीं ऐसा तो नहीं कि बस कैसिल हो गई या फिर उसका टायर पंकचर हो गया. कुछ तो हुआ है, अन्यथा अब तक उसे आ ही जाना चाहिए था. अधीर होकर उसने फ़ोन घुमाया. वह जानना चाहता था कि उसे आने में विलम्ब क्यों हो रहा है अथवा उसका अभी लौट आने का मन नहीं हो रहा है?. फ़ोन की घंटी बज रही थी लगातार. फिर फ़ोन पर एक आवाज उभरती है “सब्सक्राइबर इज नॉट आन्सरिंग”. उसे आश्चर्य हुआ कि आखिर वह फ़ोन क्यों नहीं उठा रही है. फ़ोन रिचार्ज होने लिए स्वीचबोर्ड पर टंगा है या फिर संभव है कि फ़ोन उसकी पहुँच के बाहर है, या फिर वह अपना पर्स ले जाना भूल गई? शायद इसलिए वह फ़ोन अटैण्ड नहीं कर पा रही होगी. उसने फिर से नम्बर मिलाया और इन्तजार करने लगा. इस बार भी वही रटारटायी जवाब सुनने को मिला. उसकी खीज बढ़ती जा रही थी. उसने अधीर होकर एस.एम.टी के संचालक संतु को फ़ोन लगाया और बस की लोकेशन जानना चाहा कि बस आई भी अथवा नहीं. फ़ोन पर एक स्वर गूँजा- “भाईसाहब..बस तो अपने निर्धारित समय पर कभी की आ चुकी. क्या कोई आने वाला था उससे?”. “हाँ भाई हाँ.. मेरी पत्नी आने वाली थी और वह अब तक घर नहीं पहुँची है, बस उसी का इन्तजार कर रहा था”. “हो सकता है कि भाभीजी को बस-स्टैण्ड में आने में देर हो गई हो और बस जा चुकी हो. (उसने समझाते हुए कहा) हर पन्द्रह मिनट

पर एक बस यहाँ के लिए रवाना होती है, हो सकता है कि वे किसी दूसरी बस से रवाना हो चुकी हों. और थोड़ा इन्तजार कर लीजिए”. एक सांत्वना देने वाला स्वर गूँजा था उस तरफ़ से.

तभी उसने महसूस किया कि उसके अन्दर बैठा एक अजनबी आदमी उछलकर उसके सामने वाली कुर्सी में आकर धंस गया है. अमरकांत इस समय कपड़े बदलकर जुराब पहनने के लिए झुका हुआ था. उसे सामने देखकर उसने पूछा- “तुम यहाँ कैसे घुस आए, जबकि दरवाजा अन्दर से बंद है? आखिर तुम हो कौन, क्या नाम है तुम्हारा, कहाँ रहते हो और क्या चाहते हो मुझसे?. उसने एक साँस में कई प्रश्न उछाल दिए थे.

“आश्चर्य....घोर आश्चर्य...(हंसते हुए) तुम मुझे नहीं जानते. मैं तुम्हारे ही भीतर रहता हूँ..दूसरा आदमी. फिर पूछोगे....दूसरा कौन?. मैं समझता हूँ- जरा ध्यान से सुनना -“ ईश्वर ने हमें दो मस्तिस्क दिए हैं, दो आँखें दी है, नाक में दो नथुने दिए है, दो फ़ेफ़ड़े दिए हैं, दो हाथ दिए है, पेट भी दो है और पैर भी दो दिए हैं. ठीक इसी तरह हर आदमी के भीतर एक आदमी और हर औरत के भीतर एक औरत रहती है. अब तुम मुझे अजनबी समझ लो या फिर दूसरा आदमी. जब कोई आदमी हलाकान-परेशान रहता है, जब उसे कुछ भी सुझाई नहीं देता, ठीक उस समय वह अपने अन्दर के आदमी से सलाह-मश्विरा करता है, फिर किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है. मैं वहीं अन्दर का आदमी हूँ.” उसने कहा.

अमरकांत की इच्छा हुई कि उसका टेंटुआ पकड़कर दबा दे ताकि हमेशा-हमेशा के लिए छुटकारा पा जाए क्योंकि वह किसी कुशल जासूस की तरह पिछले कुछ दिनों से उसका पीछा करता आ रहा है और उसकी हर छोटी-बड़ी बातों और हरकतों को जान जाता है. अपने गुस्से पर नियंत्रण करते हुए उसने अहिस्ता से कहा—“-बंद करो अपनी बकवास और यहाँ से उड़न-छू हो जाओ. वैसे ही मुझे आफ़िस जाने में विलंब हो रहा है. मेरे पास बिल्कुल भी समय नहीं है कि मैं तुम्हारी बकवास सुनता रहूँ... समझे तुम”. इतना कहकर उसने ताला जड़ दिया. ऐसा करते हुए उसे प्रसन्नता हो रही थी कि उसने उसे भीतर बंद कर दिया है.

बाहर निकलकर उसने अपनी मोटरसाइकिल निकाली. इस समय घड़ी में दिन के साढ़े ग्यारह बज चुके



थे, जबकि उसका आफ्रिस ग्यारह बजे से शुरू होता है। उसने जेब से मोबाईल निकाला और तत्काल आफ्रिस मैनेजर को फ़ोन लगाते कहा कि किसी आवश्यक कार्य के चलते उसे आफ्रिस आने में विलंब हो गया है। वह ठीक बारह बजे से पहले आफ्रिस पहुँच जाएगा और आधे दिन की कैजुअल-लीव के लिए आवेदन दे देगा।

उसकी मोटरसाइकिल आफ्रिस की ओर बढ़ रही थी लगातार। तभी उसने महसूस किया कि वही अजनबी, लगभग हवा में तैरता हुआ उसके साथ चला आ रहा है। उसे देखकर उसका माथा ठनका। वह सोचने पर मजबूर हो गया कि जिसे मैंने ताले में बंद कर दिया था, बाहर कैसे निकल आया? वह कुछ और सोच पाता कि उस अजनबी ने कहा-“ दोस्त..बुरा मान गए? इसमें बुरा मानने जैसी कोई बात ही नहीं थी। मैं अब भी कह रहा हूँ कि इन्तजार-विन्तजार छोड़ो। वह नहीं आने वाली। मैं तुमसे कब से आगाह कर रहा हूँ कि औरत जात पर विश्वास करना नीरी बेवकूफी है। पिछली बार भी तो ऐसा ही हुआ था और इस बार भी वही हो रहा है., लेकिन तुम हो कि उसे सती सावित्री समझे बैठे हो.”

वह सरासर उसकी बीबी पर लांछन मढ़ रहा था। सुनते ही उसके क्रोध का पारा चढ़ने लगा था। अब वह गुस्से में फ़ट पड़ा था। उसने लगभग चीखते हुए कहा- “बंद करो अपनी बकवास...तुम कौन होते हो मेरी बीबी पर लांछन मढ़ने वाले?”

“ फिर तुम नाराज हो गए. क्या सच्ची बात कहना बुरा है? फिर एक हमदर्द झूठ का सहारा भला क्यों कर लेगा? वह कहकर गई थी कि तीन दिन बाद लौट आएगी..फिर क्यों नहीं लौटी? तुम बार-बार फ़ोन लगा रहे हो और फ़ोन का हमेशा स्वीच ऑफ़ रहना, क्या इस बात का संकेत नहीं है कि उसे तुम्हारी कोई फ़िक्र नहीं है. फ़िक्र यदि रही होती तो फ़ोन लगाती, बतियाती और अपने न आने का कारण भी बतलाती. न तो उसने तुम्हारा फ़ोन उठाया और न ही पलट कर फ़ोन लगाया. शायद तुम नहीं जानते, वह अपने समय की ब्यूटीक्यून रही है. कालेज का हर लड़का उस पर अपनी जान छिड़कता था. नाटकों का उसे बड़ा शौक था. हर कोई उसका हीरो बनना चाहता था. मतलब एकदम साफ़ है. उसे अपनी नाटक कम्पनी मिल गयी होगी और वह अपने किसी लवर की बाहों में महारानी बनी झूल रही होगी तभी तो.....”

“मैंने कहा न ! अपनी बकवास बंद करो और मेरा पीछा छोड़ो.”

“ठीक है, जैसी तुम्हारी मर्जी. मेरा काम तो तुम्हें आगाह करने का था, सो मैंने कर दिया. अच्छा तो अब मैं तुमसे बिदा लेता हूँ”. कहकर वह अदृश्य हो गया। आफ्रिस पहुँचकर उसने टेबल की ड्राज से कोरा कागज निकाला। दरखास्त लिखा और चेंबर में घुसते हुए उसने आफ्रिस मैनेजर को दिया और अपनी सीट पर आकर जम गया।

अजनबी के द्वारा लगाए गए लांछनों से उसका

दिल छलनी-छलनी हो गया था। बार-बार उसकी नजरों के सामने सुनीता किसी अपराधी की तरह आकर खड़ी हो जाती। उसकी डबडबाई आँखें देखकर साफ़ जाहिर होता है कि वह अपराधी नहीं है। संभव है कि उसकी फ़ेमिली में कोई बीमार पड़ गया हो, यह भी तो संभव है कि वह खुद बीमार पड़ गई हो। यह भी संभव है कि उसका फ़ोन चोरी चला गया हो। निश्चित ही कोई न कोई कारण अवश्य रहा होगा, जिसकी वजह से वह अपने आने अथवा न आने के कारण नहीं बतला पाई। तरह-तरह के विचार उसे उद्वेलित कर जाते। उसे इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं रहा कि इस समय वह आफ्रिस में बैठा है और उसे अपना काम निपटाना चाहिए।

मैनेजर ने प्यून भेजते हुए उसे तत्काल कैबिन में हाजिर होने की सूचना भिजवाई। “अभी आता हूँ” कहकर वह अपनी कुर्सी में बुत बना बैठा रहा। प्यून दो बार बुलाने आया, लेकिन वह अपनी सीट से उठा तक नहीं। उसे ध्यान ही नहीं रहा कि साहबजी का बुलावा आया है। उसे आता न देख मैनेजर खुद उसके चेंबर में जा पहुँचा। वह अपने ही बनाए हुए चक्रव्यूह में इतना अधिक उलझा हुआ था कि उसे पता ही नहीं चल पाया कि मैनेजर साहब ठीक उसके सामने वाली कुर्सी पर विराजमान है।

“क्यों, क्या बात है मिस्टर अमरनाथ ! जब काम करना ही नहीं था तो आफ्रिस क्यों चले आए ? शकल-सूरत देखकर तो लगता है तुम आज मैंटली डिसटर्ब हो. घर जाओ और किसी डाक्टर से चेकअप करवाओ. जब तक तुम ठीक नहीं हो जाते, तुम्हें आफ्रिस आने की जरूरत नहीं...समझे” डांटते हुए मैनेजर उसके केबिन से बाहर निकल गया।

दरअसल उसका मन किसी काम से जुड़ नहीं पा रहा था। उसने जेब से सिगरेट के पैकेट में से सिगरेट निकाली और माचिस चमकाते हुए उसे सुलगाया। गहरे कश खिंचते हुए उसे कुछ राहत सी महसूस होने लगी थी। यह उसकी पांचवीं सिगरेट थी। अब तक वह चार सिगरेट फूंक चुका था। किसी तरह समय पास करते हुए वह पांच बजने का इन्तजार करने लगा। पांच बजते ही उसने अपना केबिन छोड़ा। मोटरसाइकिल निकाली और घर की ओर चल पड़ा।

रास्ता चलते हुए उसने अपनी रिस्टवाच पर नजर डाली। शाम के छः बजे थे। अभी से घर जाकर क्या करेगा ? इस सोच के चलते उसने अपनी मोटरसाइकिल का रुख पार्क की ओर मोड़ दिया। गाड़ी एक ओर पार्क करते हुए वह भीतर जाकर एक बेंच पर बैठ गया। अभी पार्क में ज्यादा भीड़-भाड़ नहीं थी। इक्का-दुक्का बच्चे घिसर-पट्टी पर खेल रहे थे। चारों तरफ़ हरियाली छाई हुई थी। रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे, जिन पर तितलियाँ मंडरा रही थी। शीतल हवा बह निकली थी। यहाँ आकर उसे कुछ राहत सी महसूस हुई, बावजूद इसके, अफ़सर की डाँट का असर अब तक उस पर तारी था। मन अब भी कसेला था।

देर तक बैठे रहने के बाद उसने अपने घर की तरफ रुख किया. ताला खोला. घर में प्रवेश किया. अन्दर अन्धकार का साम्राज्य छाया हुआ था. उसने लाईट आन किया. पल भर में चारों तरफ रोशनी फैल गयी. जूतों को एक ओर उतारते हुए वह सीधे ड्राईंग रूम में जाकर कुर्सी में धंस गया. देखता क्या है कि वही अजनबी आदमी, सामने वाली कुर्सी में बैठा हुआ उसे घूरते हुए मुस्कुरा रहा था. उसे देखते ही वह बमक उठा- “तुम यहाँ..बंद घर में, आखिर तुम घुसे कैसे..निकलो...निकलो...इसी समय तुम घर के बाहर निकल जाओ...जीना हराम कर रखा है तुमने मेरा..नहीं निकले तो मैं तुम्हारा गला घोट दूंगा..जान से मार डालूंगा... समझे”. देखते ही वह लगभग फ्रंट सा पड़ा था और वह बेशर्मा अब भी मुस्कुरा रहा था.

“तुममें इतनी हिम्मत है तो मार डालो मुझे... मैं देखता हूँ तुम अपने ही वजूद को कैसे मार सकते हो...लो मैं सामने खड़ा होता हूँ...घोट दो तुम मेरा गला और मार डालो मुझे.....लेकिन एक बात याद रखना...मैं मर जाऊँगा लेकिन झूठ नहीं बोलूँगा. मेरी बात अब भी मान लो, वह नहीं आने वाली.. नहीं आने वाली. तुम्हारी जरा सी भी फिक्र होती तो अब तक आ गई होती....(कुछ देर बाद). क्यों...गला घोट देने के लिए तुम्हारे हाथ उठ क्यों नहीं रहे हैं जबकि मैं ठीक तुम्हारे सामने खड़ा हूँ...मैं जानता हूँ तुममें इतनी हिम्मत ही नहीं है कि तुम मेरा गला घोट दो..अरे..जिसने अब तक एक चींटी भी नहीं मारी, वह भला किसी इन्सान को कैसे मार सकता है?...बुजदिल कहीं के...चलता हूँ सुबह फिर मिलूँगा” इतना कहकर वह घर के बाहर निकल गया था.

उस आदमी के चले जाने के बाद उसने राहत की सांस ली.

दिन भर की माथपट्टी के चलते उसका मिजाज अब तक गर्माया हुआ था. सिर में भारीपन अब तक तारी था. उसने अपने कपड़े उतारे. बाथरूम में जाकर शावर के नीचे जा खड़ा हुआ. शावर आन किया, शावर से शरीर पर पड़ने वाली शीतल बूंदें उसे अच्छी लग रही थी. देर तक उसके नीचे खड़े रहने के बाद अब वह तरोंताजा महसूस करने लगा था.

नहाने के बाद उसे भूख लग आयी थी. आफ्रिस जाने के पहले उसने सुनीता की मनपसंद शिमलामिर्च की भरवां सब्जी, चार परत वाले पराठें, फ्राई चावल, दही और पापड आदि तल कर रखे थे. उसे पक्का यकीन था कि वह दस बजे तक घर आ जाएगी, सो साथ बैठकर खाना खाएंगे. इन्तजार करते-करते ग्यारह बज चुके थे और उसके आफ्रिस का टाईम भी हो चला था. भूख लगभग समाप्त हो गई थी और वह सीधे आफ्रिस चला गया था. सुबह का बनाया हुआ भोजन ठंडा पड़ चुका था. स्टोव्ह में उसने खाना गरम किया. खाने बैठा तो खाना नहीं गया. “परसी हुई थाली का अनादर नहीं करना चाहिए”, उसे मां के शब्द याद आ गए. भारी मन से उसने किसी तरह दो पराठें हलक के नीचे उतारे और हाथ धो लिए.

खाना खाकर वह बिस्तर पर आकर पसर गया. बिस्तर पर आते ही सुनीता के साथ बिताए गए एक-एक पल जीवन्त हो उठे. शरीर में एक उत्तेजना सी फैलने लगी. सांसे फूलने लगी. आँखों में एक नशा सा चढ़ने लगा था. खाली बिस्तर देखकर उसका सारा नशा पल भर में काफूर हो गया. सब ओर से ध्यान हटाते हुए उसने बिस्तर पर ही पड़े-पड़े टीव्ही. ऑन किया. बाबी फ़िल्म चल रही थी. अब वह उसमें मजा लेने लगा था. फ़िल्म देखते-देखते, कब वह नींद की आगोश में चला गया, पता ही नहीं चल पाया.

सुबह सोकर उठा तो पूरा शरीर भारी लगा, किसी तरह उसने बिस्तर छोड़ा. फ़्रेश होकर नहाया, तब जाकर कुछ अच्छा सा लगा. कुर्सी में धंसते हुए उसने फ़ोन उठाया. नम्बर डायल किया, लेकिन निराशा ही हाथ लगी. फिर दूसरा एक विचार मन में आया कि सुनीता के पापा को फ़ोन लगाकर जानकारी ली जाए. “ऐसा करना उचित नहीं होगा” सोचते हुए फ़ोन रख दिया. अब उसने निर्णय ले लिया था कि वह सुनीता को लेकर ज्यादा कुछ नहीं सोचेगा. उसे जब आना होगा, तब आ जाएगी.

बाहर खटर-पटर की आवाज सुनकर सहसा उसका ध्यान खिड़की पर गया. वह दूसरा आदमी खिड़की की कांच में से भीतर तांक-झांक कर रहा था. “शायद डर के चलते अब वह अन्दर आने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा होगा” उसने सोचा

अचानक उसके फ़ोन की घंटी टनटना उठी. उसने यह सोचते हुए लपककर फ़ोन उठाया कि सुनीता का ही फ़ोन होगा. लेकिन दूसरी तरफ़ से आती आवाज किसी मर्द की थी. कुछ कहने से पहले उन्होंने अपना परिचय देते हुए बतलाया – “दामादजी...मैं दामोदर बोल रहा हूँ..मंजू का पिता. शायद आप मुझे नहीं जानते. जानेंगे भी कैसे? आपका यहाँ आना काफ़ी कम ही रहा है न ! इसलिए आपसे मेरा परिचय नहीं हो पाया. मंजू और सुनीता बचपन की सहेलियाँ हैं. आप यह समझ लें की दो जिस्म और एक जान है वे दोनों. जिस दिन सुनीता जाने की सोच रही थी, उसी दिन मंजू को डेलिवरी के लिए हास्पिटल में भरती किया गया. डाक्टर ने बतलाया कि बच्चा उसकी अंतड़ियों में फंस गया है, अतः तत्काल आपरेशन करना होगा, सुनीता भी उसके साथ ही थी. खैर किसी तरह डिलेवरी हुई. पोता पैदा हुआ लेकिन मंजू की ब्लिडिंग नहीं रुक पा रही थी. उसकी जान खतरे में थी, उसे तत्काल नागपुर ले जाया गया. मैं ठहरा एक अपाहिज, चल-फ़िर नहीं सकता. घर में अन्य कोई मेंबर न होने के कारण सुनीता को उसके साथ जाना पड़ा. करीब सप्ताह भर उसे वहाँ रुकना पड़ा. इतना सुनने के बाद भी आपके मन में एक प्रश्न जरूर उठ खड़ा हो गया होगा कि सुनीता ने आपको फ़ोन क्यों नहीं लगाया? मैं भी आपको फ़ोन पर इस बाबत सूचना नहीं दे पाया. हालात ही कुछ ऐसे बन पड़े थे जिसका बयान मैं नहीं कर सकता. अगर सुनीता न होती तो शायद ही मेरी बेटी की जान बच पाती ? बेटा...मैं तुम्हारा गुनहगार हूँ...मुझे माफ़ कर दो. (अपनी व्यथा-

कथा सुनाते हुए दामोदर जी फ़वक कर रो पड़े थे. उनके सिसकने की आवाज फ़ोन पर स्पष्ट रूप से आ रही थी). बेटा...तुम्हें अकारण इतने दिनों तक कष्ट उठाना पड़ा, मुझे माफ़ कर दो. मेरा विश्वास है कि आप सुनीता को भी माफ़ कर देंगे.”

“ इतनी बड़ी घटना घट गई और आपने मुझे सूचित करना तक उचित नहीं समझा ? काश मुझे इस बाबत सूचना मिल जाती तो मैं भी वहाँ चला आता....आपकी मदद करता...आपका सहायक ही सिद्ध होता”

“आपकी शिकायत उचित है बेटे, लेकिन हालात ही कुछ ऐसे बन पड़े थे कि हम सबकी सांसे थम सी गई थी. जिन्दगी और मौत के बीच झुलती मेरी बच्ची यदि आज जीवित है तो उसका सारा श्रेय सुनीता बेटा को जाता है. मेरा आपसे पुनः अनुरोध है कि आप उसे माफ़ कर देंगे”

इसके बाद कहने-सुनने को कुछ बचा ही नहीं था. हफ़्ता-दस दिन के भीतर दिल के आंगन में जमीं कलुषित भावनाओं की कई पिघलकर, आँखों के रास्ते बहने लगी थी. सुनीता के प्रति उठे नफ़रत के ज्वारभाट अब तिरोहित होने लगे थे. मन में एक अजीब शांति सी महसूस होने लगी थी और सुनीता के प्रति प्यार के बादल उमड़-धुमड़कर उसके दिल और दिमाक पर छााने लगे थे. दूसरे ही पल, उसे उस भीतर के आदमी पर क्रोध आने लगा था. “यह तो अच्छा ही हुआ कि वह उसकी बातों में नहीं आया वरना अनर्थ हो जाता. शंका की एक छोटी सी चिंगारी उसके आशियां को जलाकर खाक कर देती” उसने सोचा.

दिल और दिमाक पर छाया बोझ उतर गया था. अब वह अपने आपको तरोताजा सा महसूस करने लगा था. उसने झट से शेव किया, नहाया और आफ़िस चला गया.

फ़ोन पर सूचना देते हुए सुनीता ने बतलाया कि वह लौट आयी है. बात को आगे बढ़ाते हुए उसने शाम को जल्दी घर आने का आग्रह भी किया था उसने.

सुनीता के आगमन की बात सुनते ही उसके मन के सूने आंगन में वसन्त उतर आया था, कोयल कुहकने लगी थी और लाखों फूल एकाएक खिल उठे थे. “जी अच्छा जी” कहते हुए उसने फ़ोन काट दिया था.

पहाड़ सा भारी दिन कैसे कट गया, पता ही नहीं चल पाया. पांच बजते ही वह अपने केबिन से बाहर निकला. मोटरसाईकिल स्टार्ट की और अब वह किसी फ़िल्मी हीरो की तरह गीत गुनगुनाता, सीटी बजाता घर की ओर चला जा रहा था.

रास्ता चलते उसने सोचा- सुनीता ने उसे इतने दिनों तक खूब तड़पाया है, इन्तजार करवाया है, क्यों न थोड़ा विलंब से घर पहुँचा जाय. इस ख्याल के आते ही उसने अपनी मोटरसाईकिल की दिशा बदल दी. यहाँ-वहाँ के चक्कर लगाने के बाद अब वह पालिका-मार्केट में जा घुसा. उसने सुनीता के पसन्द की तरह-तरह की मिठाइयाँ खरीदी, मोगरे के फूलों का गजरा खरीदा, एक बुके लिया

और लौट पड़ा.

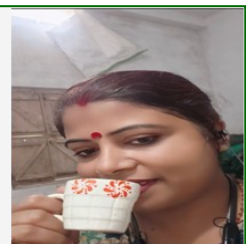
उसकी चाल में एक विश्व विजेता की सी उछाल थी और मन किसी पंखी की तरह चहचहा रहा था. घर पहुँचते ही उसकी अंगुली कालबेल पर जा पहुँची. कालबेल के बजते ही जल-तरंग की स्वर-लहरी तरंगित होने लगी. सुनीता ने दरवाजा खोला. एक मादक मुस्कराहट बिखेरते हुए सुनीता ने उसका स्वागत किया. अमरनाथ ने गुलदस्ता देते हुए उसे अपनी बाहों में कैद कर लिया और ढेरों सारा चुम्बक उसके गालों पर जड़ दिया. बाहों के घेरे में दोनों देर तक अविचल खड़े रहे.

दामोदर जी से सारी हकीकत जान चुकने के बाद शिकवे-शिकायत की बात छेड़ना उसे उचित नहीं लगा. वह जानता था कि ऐसा किए जाने से हसीन रात खराब हो सकती है. किचन से उठकर दोनों बेडरूम में चले आए. कमरे में प्रवेश करते ही सबसे पहले उसकी नजर बिस्तर पर पड़ी. जगह-जगह गुलाब की पंखुड़ियाँ बिखरी हुई थी. पूरे कमरे में फ़ेशनेस का छिड़काव कर दिया गया था और एक कोने में फ़ेगनेंट अगरबत्ती सुलग रही थी. मन ही मन वह सुनीता की तारीफ़ किए बिना न रह सका था. शायद सुनीता जानती थी कि रात को किस तरह खुशनुमा और रंगीन बनाया जा सकता है. उसने सोचा.

बिना समय गवाएँ उसने उसे अपनी बाहों में उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया और वह उस पर झुकने ही वाला था कि उसे अजनबी की याद हो आयी. अमरकांत नहीं चाहता था कि वह किसी विलियन की तरह बीच में टपककर कीमती पलों को बर्बाद कर दे. उसने देखा. खिड़की पर पड़ा पर्दा खुला रह गया है, संभव है कि अन्दर तांक-झांक करने लगे. उसका शक सही निकला. पता नहीं वह कब आ धमका था और पर्दे की ओट से अन्दर झांक रहा था. वह चुपचाप से उठा. पर्दे को ठीक किया और कमरे में जल रही बत्ती बुझा दिया. अब वह निश्चिंत होकर स्वर्गीय आनन्द ले सकता था.

थकन

देह की थकन
नहीं मिटती चाय की
चुस्कियों से
हों क्षणिक राहत तो
मिल ही जाती है
और मिल जाती है
चाय की चुस्कियों में
दिन भर की
तमाम खट्टी-मीठी बातें



रंजनालता

समस्तीपुर

कस के थामती हैं
ये हाथ चाय की
प्याली को
इसलिए कि इसी क्षणिक
राहत को पाकर
थकी देह फिर से
खड़ी होती है
स्वयं को और थकाने के लिए



श्यामल बिहारी महतो

ग्राम - मुंगो, पोस्ट- गुंजरडीह
बोकारो, झारखंड-829132,

कहानी

प्यार का दहन

वह अपने हेल्पिंग नेचर के कारण पूरे गांव में जाना जाता था। शादी-ब्याह हो या भोज-मरखी, सभी में अपने लिए काम की जगह वह ढूँढ ही लेता था। गांव में किसी की मृत्यु होती, तब हाथ में टांगी लिए सबसे पहले वो वहां खड़ा मिलता, उसी तरह शादी-ब्याह की अमड़ा-झमड़ा की तैयारी में वह तैनात रहता था। इसी नेचर ने उसे लोगों का चहेता बना रखा था। आर्थिक रूप से वह भले ही लोगों की मदद नहीं कर पाता, परन्तु शारीरिक तौर पर सबसे ईंट बालू की तरह जुड़ा रहता था। उसी किसना (कमलेश) के जीवन में एक दिन ऐसा मोड़ आया जिसे देखगाँव भरकी सहानुभूति उस पर उमड़ आयी थी।

पांच साल पहले बी.ए. बेरोजगार किसना काम की तलाश में कतरास गया था। एक पावर प्लांट से उसे बुलावा आया था। थी तो बड़ी कंपनी, लेकिन वेतन कम मिलने की वजह से लोग प्लांट में ज्यादा दिन टिक नहीं रहे थे। मजबूरी वश किसना वहां किसी तरह टिका हुआ था। प्लांट से आधे किलो मीटर दूर प्लांट वर्कर्स के रहने के लिए सीटों वाला घर बनाया गया था। किसना भी उसी में एक खाली कमरे में रहने लगा था। वहाँ से ठीक दो सौ गज की दूरी में एक कोल स्टोर था- " रघुनाथ कोल स्टोर " कोई पाण्डेय जी था इसका मालिक। दान- पुण्य और पूजा पाठ में इनका जरा भी लगाव नहीं था। मेहनत को विकास का पैमाना मानता था। बच्चों को भी यही सीख देता और जाति बंधन के खिलाफ मंच पर चढ़कर खूब भाषण मारता था। इस कारण पत्नी से हमेशा उसे पंगा लेना पड़ता था। अलबत्ता बच्चे उनके साथ थे। मंझली बेटी साइंस से टेन - प्लस टू कर रही थी। नाम था काजल। एक दिन उसने बाप से कहा " मुझे साइंस पेपर के ट्यूशन लेनी होगी, वरना परीक्षा में दिक्कतें आयेगी..! "

" पढ़ाने वाला कोई मास्टर नज़र में है तो बोलो, लगवा देंगे..! " बाप बोला।

किसी ने किसना का नाम सुझाया था। शुरू में किसना इसके लिए राजी नहीं हुआ। फिर मन ने समझाया " टका - पैसा कमाने निकले हो, कर लो " वह मान गया। और मन लगा कर काजल को पढ़ाने लगा। धीरे धीरे काजल का मन पढ़ाई के साथ साथ किसना में भी रमने लगा। पर यह बात किसना पता नहीं था। पढ़ाई को लेकर काजल अक्सर किसना से खूब तर्क वितर्क करती।

किसना भी उसकी हर बात का निदान ढूँढता और उत्तर देता था।

प्लांट में छुट्टी के एक दिन काजल ने किसना को कतरास सिनेमा हॉल में " एक दूजे के लिए " फिल्म दिखाने को लगभग विवश कर दिया " देखो, यह फिल्म मुझे देखनी है, वरना पढ़ाई में मेरा मन नहीं लगेगा..! " वह तुनक उठी थी। बेचारा किसना को काजल की बात माननी पड़ी। शायद इसी तरह दो दिलों की दास्तान शुरू होती है। उसी दिन से काजल किसना की गोदी में बैठने और गले में बाहें डालने के सपने देखने लगी। एक दिन उसने हृदय कर दी, ट्यूशन के दरम्यान काजल किसना के कंधे पर सर टिका कर बोली " आई लव यू. कैसु..! "

" ओह! नो, आई नॉट लव यू..! " किसना उछल कर खड़ा हो गया था " यह असंभव है ! मैं तुमको पढ़ाने की हामी भरा हूँ, प्यार करने वाला तुम्हें दूसरा मास्टर ढूँढना होगा...! "

" आई लव यू...! " काजल ने फिर जोर से कहा और किताब उठा कर चल दी। किसना आवाक खड़ा उसे देखता रहा।

माँ बीमार है, कह किसना काम से दो दिन की छुट्टी लेकर घर चला आया। उसे काजल के बाप का डर सताने लगा था। इस तरह की लडकियाँ भरोसे की काबिल नहीं होती है! जीना हराम कर देती है, उसने सोचा था। उधर अचानक काम छोड़ चले जाने से काजल परेशान हो उठी। पढ़ाई से उसका मन उचट गया। कॉलेज जाती पर क्लास में मन नहीं लगता। हमेशा खोई खोई रहने लगी। बाप पूछता " बात क्या है? " पर उसका भी कोई जवाब नहीं देती। दो दिन वह प्लांट के गेट तक पहुँच गयी। पर वहाँ भी किसना का कुछ पता नहीं चला।

चार दिन बाद किसना काम पर लौट आया था। परन्तु रहने का जगह उसने बदल लिया था। कंपनी क्वार्टर छोड़ दिया था। इससे काजल और भी परेशान हो गयी। किसना का कोई सुराग उसके हाथ नहीं लग रहा था। फिर भी पागलों की तरह उसे ढूँढती फिर रही थी। किसी ने कतरास की डेली मार्केट का जिक्र किया। वह अब कॉलेज के बाद डेली मार्केट का चक्कर लगाने लगी। उसकी यह हालत देख बाप उस पर बिगड़ता " यह क्या पागलपन हैं काजल, हमने तुम्हें उसके पास ट्यूशन पढ़ने भेजा था, प्यार की

पढाई पढने नहीं..!"

तभी एक दिन डेली मार्केट में किसना पर उसकी नज़र पड़ गई। वह भिंडी खरीद रहा था। किसना दौड़ती हुई पहुंची उसके पास "तुम यहाँ भिंडी खरीद रहे हो और मैं पागलों की तरह तुम्हें ढूँढती फिर रही हूँ..!" और काजल किसना से लिपट गई थी। लोगों की निगाहें उन पर चिपक गई। किसना कतराता हुआ खुद को काजल से अलग किया "यह क्या तमाशा है? मैं तुम्हें नहीं चाहता, मेरी औकात नहीं है इतनी, प्लीज मेरा पीछा छोड़ दो..!" इसी के साथ किसना चल दिया था। सब्जी वाले को पैसे भी नहीं दिया। उसने आवाज दी "भाई साहब, सब्जी के पैसे..!"

"ओह ! सॉरी भाई..!" उसने लौट कर सब्जी वाले को पैसे दिया और गोली की तरह एक ओर निकल गया।

अगले दिन कतरास थाने में किसना दो घंटे से बंद था। सारे आम बाज़ार बेटी के साथ छेड़खानी करने का आरोप लगाते हुए रघुनाथ पांडेय ने शिकायत थाने में दर्ज कराई थी। सुबह पुलिस किसना को उठा कर थाने ले आई। काजल को पता चला तो थाने में आकर खूब हंगामा की "पुलिस कमलेश को क्यों उठा लाई, उसका क्या दोष है ? सारा दोष मेरा है, मैं कमलेश से प्यार करती हूँ, अगर वो मुझसे प्यार नहीं करता है तो आपको क्या हक बनता है उसे पुलिस दंड देने का ? उसे छोड़ दीजिये नहीं तो मैं इसी थाने में जान दे दूंगी..!"

"बेटी, मेरा क्या कसूर है, मैंने तुम्हें जीने की आज्ञा दी तो क्या बाप की पगड़ी सारे आम उछालती फिरोगी..?"

"बस आप बड़ा बाबू से कह दो, वो कमलेश को छोड़ दें..!"

और किसना को छोड़ दिया गया था। दूसरे दिन वह प्लांट तो गया, पर प्लांट मालिक ने उसे काम से निकाल दिया। इस नौकरी से उसे बड़ी राहत मिली हुई थी। अब फिर बेकार हो गया था। उसी समय बस पकड़ वह सीधे रामगढ़ पहुंचा। वहाँ एक पावर प्लांट में काम मिल जायेगा, ऐसा एक दोस्त ने कहा था।

उधर खोजते पूछते हुए काजल एक दिन किसना के घर पहुँच गयी। खुद को उसने किसना का दोस्त बताई और आंगन की चौखट को प्रणाम कर उसने अंदर कदम रखा। किसना की माँ आंगन में खटिया पर बैठी गंधारी साग निका (छांट) रही थी। काजल आगे बढ़ दोनों हाथ जोड़ उसकी पांव लागी की और बगल में ही बैठ गयी। उसकी बूढ़ी माँ हड़बड़ा उठी और चकित भाव उसे देखने लगी।

कोई सप्ताह दिन बाद किसना के मोबाइल पर गाँव से एक मैसेज आया "तुम्हारे घर में तुम्हारी माँ के साथ एक लड़की देखी जा रही है। बोलने में हिन्दी और देखने में अंग्रेजी लगती है..!" भेजने वाला उसका लंगोटिया यार रीतलाल था। रीतलाल मजाकिया लड़का था। मज़ाक मज़ाक में किसी को कुछ भी बोल देता था।

मोबाइल की चलन में उसका मज़ाक और बढ़ गया था। किसना ने भी उसे मज़ाक से ज्यादा कुछ नहीं समझा। और काम पर लगा रहा।

"गाँव में तुम्हारी माँ, एक लड़की को अपने साथ लिए घुमती है और खेत खलिहान दिखाते चलती है..!" दो दिन बाद उसके मोबाइल पर यह दूसरा मैसेज था। भेजने वाला भी वही था। किसना सोच में पड़ गया। क्या सचमुच मेरे घर में कोई लड़की है या यह चुतिया का पोता रीतलाल उसे चुतिया बना रहा है। कौन हो सकती है वह लड़की ? वह खुद से सवाल जवाब करने लगा। बड़की मौसी की बेटी सपना तो नहीं है, नहीं.. नहीं, घर में उसकी शादी की तैयारी चल रही है, वो यहाँ कैसे हो सकती है, कहीं फुफू की बेटी कमली तो नहीं आ गयी है? पर उसकी भी तो बी ए की परीक्षा होने जा रही है, परीक्षा के दिनों में मेहमानी, कदापि नहीं- नेवर ! फिर कौन हो सकती है ? मन किया फोन कर रीतलाल से ही पूछ लें। लेकिन काम पर जाने का समय हो चुका था। वह काम पर चला तो गाय, पर लड़की दिमाग में कुंडली मार बैठी रही। दोपहर को अकस्मात वह उछल पड़ा, पांव के नीचे जैसे बिच्छू आ गया हो "कहीं उसका पीछा करते हुए काजल तो नहीं पहुंच गयी, उस पागल लड़की का क्या भरोसा..?"

शाम को फोन कर रीतलाल से "काजल" ही है उसने कन्फर्म कर लिया था। फिर तो रात भर किसना सो न सका। राहत की बात यह थी कि अभी तक घर में पुलिस नहीं पहुंची थी न उसका बाप पहुंचा था।

माँ बीमार है कह, प्लांट से उसने दो दिन की छुट्टी ले ली और घर पहुंचा। घर का पूरा हुलिया बदला हुआ पाया।

"मैं अपने माता पिता का घर छोड़ जीवन भर तुम्हारा साथ निभाने इस घर में चली आई हूँ। भगवान् के लिए, अब अपने से दूर जाने कभी मत कहना। मरते दम तक साथ निभाऊंगी..!" और काजल किसना से लिपट गई थी।

उसी शाम गाँव के शिवमंदिर में, पंचायत की मौजूदगी में दोनों ने शादी कर ली। किसना सप्ताह दिन घर में रहा, फिर काम पर चला गया। अब वह सप्ताह में एक दिन घर आता। और अगली सुबह काम पर निकल जाता। किसना जब तक घर में रहता, काजल लव वर्ड बनी रहती। दोनों का प्यार देख, किसना की माँ सुगिया देवी फूले न समाती। दोनों के जीवन की गाड़ी चल पड़ी। साल भर बाद ही किसना ने एक नयेपक्के मकान की बुनियाद रखी। लिंटर तक काम हुआ। तभी माँ का पैर फ्रेक्चर हो जाने से घर का काम रूक गया तो रूका ही रह गया। उन्हीं दिनों घर में बच्चे की किलकारी गूँजी। कजरी माँ बन गयी। एक सुंदर सी बेटी को उसने जन्म दिया। काजल के प्रति किसना का प्यार और बढ़ गया। काजल का मां बनने की खुशी में उसके माता पिता ढेर सारे उपहार लिए पहली बार घर पधारे। दोनों की खूब आब भगत की गई। काजल की खुशी चौगुनी हो गई। शादी में माँ बाप को बुलाई थी।

लेकिन तब किसी ने आना ज़रूरी नहीं समझा था। सड़कें अच्छी हो और बसें भी नयी हों तो कोई स्पीड ब्रेकर बसों की रफ्तार को कम नहीं कर पाते। दो साल पूरा होते होते काजल दूसरी बार माँ बनी। इस बार उसने एक सुंदर से बेटे को जन्म दी। किसना की बूढ़ी माँ पोता आने की खुशी में डेढ़ गोड़ से ही आंगन में नाचने लगी।

उसके बाद के दो तीन साल उस घर में किसी तरह का कोई उत्पादन नहीं हुआ। समय भी उस घर के प्रति मेहरबान बना रहा। किसना का इरादा था इस वर्ष अधूरे घर को पूरा करना। इसके लिए उसने जोड़ घटाव करना भी शुरू कर दिया था, कि तभी वो घटना घट गयी। जो किसी ने सोचा भी नहीं था।

दो दिन पहले अचानक से काजल घर से लापता हो गयी। लापता हो गई या लापता कर दी गई, यह भी किसी को पता नहीं था। कोई कहता राजू उसे भगा ले गया, तो कोई कहता था, कजरी खुद उसके साथ भाग गयी है। गाँव में जितनी मुंह, उतनी बातें। उधर गाँव वालों की माने तो राजू रांची में किसी बड़ी कंपनी में सुपरवाइजर था और वहीं जमीन खरीद कर एक शानदार घर बना लिया था। पर सच किसी को पता नहीं था। हां वह जब भी गाँव आता कजरी पर डोरे डालता। शहर की शानदार जिन्दगी के सपने उसे दिखाता। यह सिलसिला पिछले ढाई तीन सालों से चल रहा था। लेकिन काजल आज तक उसकी झांसे में नहीं आई थी। हां, तब काजल को अपना अधूरा घर और गाँव की रूखी सुखी जिन्दगी मुंह चिढ़ाती सी प्रतीत होती। ऐसा लगता गंवारू फटेहाल जिन्दगी से उकता भी रही थी। लेकिन तत्काल जीवन में बदलाव होगा, ऐसा उसे लग भी नहीं रहा था। पति से बहुत कुछ पाने की उम्मीद भी नहीं थी। कहे तो गाँव के दमघोंटू जीवन से मुक्ति चाहिए थी उसे। ऐसा उसकी चाल ढाल से प्रतीत होता। पर बदलाव का यह रंग ढंग उस पर धीरे धीरे चढ़ा था। पहले तो उसमें ऐसी कोई ऐब नहीं थी। औरत की हर चाहत को हर मरद कभी पूरा नहीं कर सकता है। कमी- बेसी का रोना सदैव लगा रहता है। किसना और काजल के साथ भी यह था। किसना को यह सब पता था। पर वह चुप था। काजल पर अविश्वास करने जैसा उसके पास कोई कारण नहीं था। सो काजल पर किसना का पूरा भरोसा बना रहा।

उसी काजल का घर से भागे दो दिन हो गया था। मतलब चौबीस घंटे से ऊपर। उसकी घर वापसी की आश लगाए बैठा किसना का धैर्य जब जवाब दे दिया, तब उसने उठाया एक ऐसा कदम जिसे देख गाँव वाले हैरान हो उठे थे..!

गांव का चौराहा अभी जागा नहीं था। सुबह का दरवाजा खुलना अभी बाकी था। ठंड ने सभी को घरों में दुबका रखा था। उसी वक्त ठंड को पीछे छोड़ते हुए किसना ने अपने डेढ़ साला बेटे महेश को गोद में उठाया और तीन साला बेटा कविता को साथ लिए कुल्हीमुंडा (चौराहा) की ओर बढ़ गया था।

इसके पूर्व उसने अपने खलिहान से दो-तीन गोनछा पुआल और लकड़ियों का एक गठर चौराहे पर पहुंचा आया था। वह बहुत उत्तेजित मालूम जान पड़ रहा था और उसी उत्तेजना में हर काम भी करते जा रहा था वह।

उगते सूरज के साथ गाँव की आधी आबादी उस चौराहे पर अब तक जमा हो चुकी थी। सभी की आंखों में एक ही सवाल " किसना इतनी ठंड में करने क्या रहा है..? " जवाब किसी के पास नहीं था। तभी वहाँ गाँव के नाई को लोगों ने आते देखा। लोग और हैरत में पड़ गए " यह नाई क्यों आया? " लोग सोंचने पर विवश थे।

अब किसना पुतला बना कर तैयार खड़ा था। माथा छिलने के लिए नाई तैयार था। लोगों का जिज्ञासा चरम पर पहुँच चुका था।

ठंड में अगहन की कंपकंपी थी। फिर भी भीड़ में कमी न थी। किसना लोगों का केन्द्र बिंदु बना हुआ था। सभी यह जानने का इच्छुक थे कि यह पुतला किसका है। और किसना इसे जलाने को उतावले क्यों हो रहा है। तभी शंभुवा काका सामने आया था। पूछा " किसना यह पुतला किसका है और तुम इसे जलाना क्यों चाहते हो..? "

किसना ने बड़ी आहत नजरों से शंभुवा काका की ओर देखा और फिर एक गहरी सांस लेते हुए आसमान की तरफ ताकने लगा। मानो किसी को अंतिम बार याद कर रहा हो। तभी भीड़ से उसने कहा -" यह मेरी पत्नी काजल का पुतला है, आप सबको मालूम होगा कि वह किसी के साथ भाग गयी है। मैं उसे बहुत चाहता था। लेकिन उसने मुझे धोखा दिया। वो मेरे इन दो मासूम बच्चों की माँ थी। लेकिन अपने क्षणिक सुख और आनंद के लिए उसने ममता की गला घोट दी। अब वह हमारे लिए मर चुकी है। पुतला जला कर अंतिम दाह संस्कार कर दूंगा..! " बोलते बोलते उसकी आवाजें भारी होती चली गई थीं। लोगों ने किसना को इसके पहले इतना भावुक कभी नहीं देखा था।

पुतले पर किरासिन डाल किसना अभी माचिस मारने ही वाला था कि किसी की तेज आवाज ने उसे रोक दिया " रुक जाइए, पांच मिनट रुक जाइए, फिर पुतले के साथ पुतले वाली को भी जला दीजिएगा..! "

सहसा लोगों की नज़र आवाज की दिशा में उठती चली गई थीं। उसे देख बहुतों को यकीन नहीं हुआ। और बहुतों को अब भी विश्वास नहीं हो रहा था। एक अदभुत दृश्य देख लोग बाग भौंचक थे। तभी भीड़ को चीरती हुई काजल किसना के सन्मुख आकर खड़ी हो गई थी। बोली " आप लोग सोंच रहे होंगे कि राजू गंवारमुझे भगा ले गया था, नहीं, मैं ही उस मरदूत को दौड़ा ले गयी थी। ताकि मैं उस कमीने की औकात और असलियत का सही सही पता लगा सकूँ। ढाई तीन साल से झूठ बोल-बोल के उसने मेरा कान पका रखा था। नाकोदम कर रखा था। तब मैंने उसकी सच्चाई जानने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसे लगा मैं उसकी बातों में आ गयी हूँ। चिड़िया जाल में फंस गयी है।

बस में सीटी बजाते जा रहा था। रांची पहुँच कर सीधे होटल चलने को कहा। मैंने कहा होटल क्यों ? अपने मकान में ले चलो, मैं खुद तुम्हारे सामने अपनी हाथों से साड़ी उतारूंगी और हम वहीं मजे से मिलेंगे। वह बहाने बनाने लगा। और होटल चलने पर जोर देने लगा। मैं अड गई। वह डर गया..! " काजल सांस लेने रूकी थी " रांची में उस कमीने की न तो कोई घर है, न वह किसी कंपनी में सुपरवाइजर है, वह तो एक मिठाई की दुकान में वेटर का काम करता है। शायद उसे पता नहीं था कि मैं एक ब्राह्मण की बेटी हूँ। किसी से प्यार कर उसके साथ शादी कर सकती हूँ तो राजू जैसे लंपट की श्राद्ध भी करवा सकती हूँ। किसी शरीफ लड़की को बहला फुसला कर भगाने और उसे धोखा देने की जूँ में मैं उस दुष्ट को अंदर करवा आई हूँ। अब भुगतें दो साल जेल की सजा..! " बोलते बोलते उसकी आवाजें सख्त होती चली गई थीं। गाँव वाले काजल में साक्षात कपसा माँ का रूप देख रहे थे।

" नावाडीह थाने में राजू को बंद करवा आई है भाभी, आज दस बजे उसे टेनुघाट जेल भेजा जायेगा ..! " काजल के पीछे खड़ा रीतलाल उस खबर की पुष्टि कर रहा था जैसे।

" कैसु, मैं मोम की गुड़िया नहीं हूँ..!" काजल किसना को प्यार से "कैसु" कह कर पुकारती थी - " तुमने ऐसा सोंच कैसे लिया कि राजू जैसे आँगे-पोंगे के आगे मैं पिघल जाऊँगी। हमारे जीवन में वह कांटे की तरह निकल आया था। उसे निकाल बाहर फेंकना जरूरी हो गया था। ठीक है, मैंने तुम्हें अपने प्लान के बारे में नहीं बताया। गलती हुई - पर आ गयी हूँ न, अब तुम चाहो तो पुतला दहन की जगह मेरा दहन कर दो - ऊफ तक नहीं करूँगी। प्यार किया है मैंने तुमसे..! " और वह भीड़ के बीच ही बैठ गयी थी।।

" उस हरामी राजू का बाप भी एक नम्बर का ठग था। " शंभुवा काका ने किसना से कहा " किसन भतीज, गुस्सा थूक दो और बहू को घर ले जाओ, यह शेरनी है, शेरनी..! "

" बहू ने बहुत बढ़िया काम किया है, गाँव की बहू बेटियाँ उसको लेकर परेशान रहती थीं..! " सोमरा बड़ी ने कहा।

" काजल भाभी जिंदाबाद..! "

" भावी मुखिया जिंदाबाद ...!! "

लडकों ने आवाज लगाई।

किसना दो कदम आगे बढ़ाया और काजल को गले लगा लिया फिर बच्चों को साथ लिए घर की ओर चल पड़ा था।



विजय कनौजिया

अम्बेडकर नगर(उत्तर प्रदेश)



प्यार की थपकी दे जाती है

माँ की कमी बहुत खलती है
यादों की लौ जब जलती है
एहसासों में आसपास है
पर वो आज नहीं दिखती है..॥

माँ की बात जहाँ होती है
मेरी आँख वहाँ रोती है
पोछती आँचल से माँ आंसू
पर मेरी किस्मत खोटी है..॥

प्यार दुलार डांट की बातें
लोरी परियों की सौगातें
नींद आजकल कम आती है
करवट में कटती हैं रातें..॥

माँ करती थी फ़िक्र हमारी
लगती थी वो सबसे प्यारी
माँ जितनी अब फ़िक्र किसे है
लगती अब हर विपदा भारी..॥

माँ की आँखों का था प्यारा
कहती थी वो राजदुलारा
माथे पर प्यारा चुम्बन कर
हर लेती थी दुःख वो सारा..॥

आज भी माँ यादों में आकर
मुझे हौसला दे जाती है
जब मैं खुद से थक जाता हूँ
प्यार की थपकी दे जाती है..॥
प्यार की थपकी दे जाती है..॥



माट साहेब

सर जी जब गाँव में शिक्षको को 'माट साहेब' कहा जाता था, तब हम उन्हें 'सर जी' कहते थे। शायद वे ऐसा संबोधन पाने वाले गाँव के पहले शिक्षक थे। सर जी किसी विद्यालय में ठहर नहीं पाते थे। साल में दो स्कूल बदल देना उनके शौक में शामिल था। सरकारी शिक्षकों की उदासीनता से उपजे मटेसरी आंदोलनकारियों में एक नाम उनका भी था। अंग्रेजी पढाते थे इसलिए माट साहेब की जगह सर जी कहलाना पसंद था उनको।

हम भी उनसे ट्यूशन लेते थे। यह वह जमाना था जब मर्द लोग अपने बालों में कंघी करते थे तो साइड से मांग निकालते थे। बीचों-बीच मांग निकालना औरतों का काम माना जाता था। सर जी ने अपने घुंघराले बालों में बीच से मांग निकालना शुरू किया। शुरू में कुछ शरारती तत्वों ने मजे भी लिये। मसलन भरी सभा में उन्हें स्त्री संबोधन से पुकारना तो कभी उनकी मांग में सिंदूर डाल देना। फिर भी सर जी को कोई फर्क नहीं पड़ता था क्योंकि उनमें सहनशक्ति गजब की थी। उनका मानना था कि सहनशक्ति इंसान को महान बनाती है। लोग जितना उनपर हँसते थे उससे ज्यादा वो खुद पर हँस कर मामले को निपटा लेते थे। लेकिन उनकी सहनशक्ति भी वास्तविक नहीं थी। वह केवल टकराव को टालने के लिए होती थी। इसका ज्ञान हमें तब हुआ जब उनकी शादी हुई।

सहन करते रहने वाले अधिकांश पुरुष अपने जीवन भर की खीझ पत्नी पर निकालते हैं। सर जी भी उनमें से एक थे। हम तो छोटे थे, ट्यूशन पढ़ने जाते थे उनके पास, हमें क्या पता था कि स्त्री क्या होती है और पुरुष का पुरुषत्व क्या होता है। लेकिन ब्याह के बाद उनके भीतर का मर्द जाग चुका था। अंग्रेजी का मास्टर अंग्रेजी को जीवन में स्वीकार करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। क्या मजाल की उनकी औरत को गाँव का कोई आदमी देख भी ले। घर पक्का किंतु पुराना था। ईंटों ने जगह-जगह खिसकना शुरू कर दिया था। ब्याह के बाद सर जी ने पहला काम किया था राजमिस्त्री बुलाकर पलस्तर कराने का ताकि गलती से भी कोई उनकी औरत को देख न ले। राजमिस्त्री से एक गलती हो गई। खिडकी के नीचे एक छोटा-सा छिद्र रह गया। हम जब ट्यूशन पढ़ने जाते पहले उस छिद्र से झांक कर सर जी की स्थिति का आकलन करते थे। फिर दरवाजा खटखटाते थे। एक दिन सर जी को मालूम हो गया। बेहया का डंडा लेकर टूट पड़ हम पर। उनको ये भी मंजूर नहीं था कि उनका शिष्य जो अभी बच्चा है, उनकी पत्नी को देख ले। बेहया के डंडे का असर हम पर नहीं हुआ क्योंकि हम भी कम बेहया नहीं थे। जब सर जी ने दिवार के उस छिद्र में भीतर से कपड़ ठूस कर हमें कुछ भी देख पाने में असमर्थ कर दिया तब हम बच्चों ने वेंटिलेटर से झांकना शुरू किया। एक दूसरे के कंधे पर चढ़कर वेंटिलेटर तक पहुंच जाते और अंदर का नजारा देखते। हमारे मन में कोई पाप नहीं था। बाल सुलभ कौतुहल था सर जी की पत्नी अर्थात् गुरुआईन को देखने का। उसी साल जब होली आई तब हम सारे बच्चे आश्वस्त थे कि आज तो गुरुआईन के दर्शन जरूर होंगे। मगर सर जी ठहरे सर जी। सारे बच्चों को एक पंक्ति में खड़ा कर एक मिलिट्री कमांडर की भांति बारी-बारी से गुरुआईन के चरणों पर गुलाल चढ़ावाया। हम सोचकर तो गये थे गाल पर गुलाल लगाना है पर चरण-वंदना कर लौट आए। फिर..... बच्चे बड़े हुए, ट्यूशन छूटा, शरारत छूटी और अंत में कमाई के लिए गाँव भी छूटा। फिर..... एक लंबा अंतराल.....

लगभग बीस सालों बाद एक बार गाँव जाना हुआ तो पता चला कि सर जी के बेटे की शादी हो गई है। जब हम वहाँ ट्यूशन पढ़ते थे तब वह बेटा गोद में था। मन हुआ तो मैं सर जी से मिलने उनके घर पहुँच गया। सर जी मुझे देखकर बेहद प्रसन्न हुए। उन्होंने आवाज लगाई - 'मेरा प्यारा शिष्य आया है। मोनी चाय लेकर आओ।'

थोड़ी देर में ज़िंस और टाँप में एक चुलबुली सी लडकी चाय लेकर आई।

मैं जानता था कि सर जी की कोई बेटी नहीं है। एक बेटा ही है। पूछा - 'सर जी ये कौन?'

सर जी उत्साहित होकर बोले - 'मेरी बहू मोनी है।'

मोनी चाय रखकर चली गई। मुझसे रहा नहीं गया। मजे के लिए बोला-'सर जी गुरुआईन को परदे में रखने के लिए आपने क्या - क्या जतन नहीं किये। दिवार की एक-एक छेद को ढूँढ़ कर बंद किया, हम पर डंडे बरसाए और आज आपकी बहू ज़िंस में सबके सामने दरवाजे के बाहर..... सर जी जोर से हँसे.... हाहाहा आह..... समय है बाबू। सब बदल जाता है। मैं चलने को हुआ तो सर जी ने कहा - 'मेरी बहू का यूट्यूब पर एक चैनल है डांस गुड़िया डांस.... सब्सक्राइब कर लेना जरूर।' मैं रुका, फिर बोला - 'अब तो एकबार गुरुआईन को देख लेने दीजिए। अब तो जमाना बदल गया ना।'

फिर दोनों एक साथ हँस पड़े - हाहाहाहा।



फलवाली बुढ़ी मां

जाड़े का मौसम शुरू होते ही वह फलवाली बुढ़ी मां हमेशा की तरह अंजीर से लदे फल की टोकरी लिए गुरु गोविंद सिंह मार्ग के मुख्य चौराहे के मोड़ पर सुबह-सुबह ही जम जाती है। हालांकि वडाला पाथरडी रोड पर ही मैं और मेरी पत्नी सुबह मॉर्निंग वाक के लिए अक्सर उसी रास्ते से गुजरते हैं, जहां फलवाली बुढ़ी मां बैठती है। मैं अक्सर उसके यहां से अंजीर खरीदता हूं। इस सीजन में पहला मौका था उसके दुकान पर जाने का। क्योंकि दुकान का आज ही शुभारंभ हुआ है तो फिर मैं अंजीर के लिए कहीं और जगह जाने या रुख करने वाला सिलसिला आज से बंद। क्योंकि मेरा पसंदीदा दुकान खुल गया। जहां से पूरा सीजन अंजीर यहीं से खरीदता हूं। 'बहुत बढ़िया अंजीर है बाबू।' उसने कहा।

हालांकि मेरा नाम राजेंद्र और मेरी पत्नी का नाम शिवानी है। वह जानती है। क्योंकि एक बार फल खरीदते समय वह बातों-बातों में नाम पूछी तो बता दिया था। कुछ और पूछना चाहती इसके पहले ही मैं अपने बारे में जानकारी दे दिया कि मैं झारखंड का रहने वाला हूं और यहां डिफेंस एकाउंट डिपार्टमेंट में कार्यरत हूं। क्योंकि हमारे पहले वाले ग्राहक से उसने पूछा था इसलिए उसके फिर से पूछने के झंझट से निजात पाने हेतु अपने बारे में स्पष्ट रूप से सब कुछ बता दिया। वह मेरा नाम जानती है फिर भी मुझे बाबू कहकर बुलाती है।

'क्या भाव है अंजीर का?' मैंने पूछा। 'साठ रुपया का पाव।' उसने कहा। मैं दो दिन पहले मेरे ऑफिस के बाजू में जो मार्केट है जिसे लेखा नगर के नाम से जानते हैं। जो सब्जी और फल के लिए बहुत ही फेमस मार्केट है। मैंने कहा- 'मैं लेखानगर से दो दिन पहले पचास का पाव लाया था अंजीर।' मोल-तोल के भाषा का प्रयोग अनायास ही पहली बार बुढ़ी मां से किया था। बाद में मुझे बहुत अफसोस हुआ। ये लोग अमीर बनने के लिए नहीं बल्कि दो वक्त की रोटी के लिए मेहनत करते हैं। मेरे इतना कहते ही वह सकपका गई। क्योंकि वह ऐसा कर अपना भाव कम करने के चक्कर में नहीं थी। मैं भी जानता हूं वह भाव कम करने पर सिरे से बिदक जाती है। और मैं उससे बुढ़ी समझ उससे कभी तोल-मोल नहीं करता। मेरी बातें सुन तपाक से बोली- 'उस मार्केट का सारा माल दो नंबर का होता है।' फिर अपने फल के तरफ मुखातिब होकर बोली- 'यह एक नंबर का अंजीर है ताजा-ताजा।' बुढ़ी मां के इतना कहते ही मैं उठ खड़ा हो गया। मुझे ऐसा करते देख बोली- 'क्यों, क्या हुआ?'

'मैं वहीं लेखानगर से ले लूंगा।' मैंने कहा। क्योंकि मुझे उस दो नंबरी फल का टेस्ट अब मुझको भा गया है। आपका अंजीर खाने से मेरे मुंह का जायका खराब हो जाएगा।'

इतना कह चलने के लिए जैसे ही उद्धत हुआ आगे बढ़ वह मेरा रास्ता रोककर खड़ा हो गई- 'बुरा मान गए क्या बाबू। तुमको पचास का पाव ही दूंगी। यह माल भी वही का है। बेचने के लिए ऐसा बोलना पड़ता है।' मैं मंद-मंद मुस्कुराते हुए अंजीर को तराजू पर चढ़ने लगा था।





सोने की हथकड़ी

अंग्रेज़ों की हुकूमत थी। बुंदन का परिवार अमीर नहीं था। बहुत समझदार भी नहीं था। पर परले दर्जे का मांसाहारी था। बुंदन का स्कूल जाने का समय आया तो दादा ने कहा, 'पढ़ाई की कोई ज़रूरत नहीं है, पढ़ाई आदमी को बुज़दिल बना देती है।' उसके अब्बू ने भी रट्टू तोते की तरह इन्हीं शब्दों को दोहराया। उसकी मां पढ़े-लिखे घराने से ताल्लुक रखती थीं। उनके पापा तहसीलदार थे। उनका संबंध संसार के बड़े ऊंचे ओधे वाले लोगों से जुड़ता था। वह शौहर की दरिंदगी से पक चुकी थी, पर कभी शिकायत नहीं करती थी। एकदम जड़-सी हो गई थी और बिना आह भरे ज़िंदगी का बोझ ढो रही थीं।

बुंदन 6 वर्ष का हुआ तो उसकी मां ने शौहर से बेटे को स्कूल ले जाने को कहा। वह बड़बड़ाए, 'नहीं, कोई ज़रूरत नहीं।' मां की बड़ी-बड़ी काली आंखें और काली हो गई, बस यूँ चमकी। वह न बोली न आह भरी, न उनके आंसू निकले। अब्बू अचानक बोले, 'चल।' बुंदन ने सोचा, शायद ठीक से नहीं सुना है। एक पल रूका, पैर में जूते डाले और चल पड़ा। पूरे रास्ते उसका दिल धड़कता रहा।

स्कूल में पतलून में कमीज़ घुरसे आंखों पर मोटा चश्मा लगाए, मास्टर जी से अब्बू ने कहा, 'मेरा बेटा बुंदन खां 6 बरस का हो गया है, स्कूल में दाखिला कराने लाया हूँ।' मास्टर जी ने रजिस्टर में नाम, पता, वलियत लिखी और उसे बच्चों के साथ बिठा दिया।

बुंदन के अब्बू रोज़ जंगल को जाते थे और एक-आध हिरण को मार लाते थे। यही उनका रोज़ का काम था। उनके घर में आदमियों की कमी नहीं थी। अगर वह चाहते तो शिकार को जाते वक्त एक की जगह कई आदमी ले जा सकते थे लेकिन उनकी आदत कुछ ऐसी पड़ गई थी कि चोर की तरह अकेले जाना ही उन्हें अच्छा लगता था। शिकार के हाथ लग जाने पर उन्हें उतनी ही खुशी होती थी जितनी कि चोर को मनमाना माल मिल जाने से होती है।

बुंदन के घर में एक लंबा-चौड़ा काले रंग का बिगडेल घोड़ा था। उसके पापा कहते थे, 'यह घोड़ा उन्हें एक अंग्रेज़ साहब ने इनाम में दिया है।' इसकी भी कहानी सुनिए -

एक दिन अंग्रेज़ साहब का घोड़ा बिदककर उनके गांव आ गया था। साहब के आदमी घोड़े को काबू में करने में अपने हाथ पैर तुड़वा चुके थे। तभी अंग्रेज़ हाथी पर बैठकर गांव आ गया। उसने ऐलान किया, 'जो कोई इस घोड़े को काबू में कर लेगा, मैं उसे इनाम में यह घोड़ा दे दूंगा।'

उनके कहने की देर थी, बुंदन के अब्बू घोड़े के पास गए, बाएं हाथ से उसकी गर्दन पर झूलते बाल पकड़े और छलांग लगाकर उसकी पीठ पर बैठ गए। अपने दोनों पैरों से घोड़े की पसलियां दबाई, घोड़ा हिनहिनाते लगा। घोड़े को अंग्रेज़ के पास ले गए। उसका सिर झुकाकर साहब के कदमों में रख दिया।

अंग्रेज़ बहुत खुश हुआ। उसने अपना वचन निभाया और घोड़ा उन्हें इनाम में दे दिया। अब्बू का घोड़े पर चढ़ने का स्टाइल बुंदन को विरासत में मिला और वह बिदके हुए घोड़े को काबू में करने की कला में माहिर हो गया था।

बुंदन की मां की सेहत दिन पर दिन गिर रही थी। उसने जिस दिन मिडिल पास किया था, वह मां का जन्मदिन था। उसके घर जन्मदिन मनाने का रिवाज नहीं था। उसने अपने जमा पैसों से मिठाई और मोमबत्ती खरीदी। रात को सब सो चुके, मां के कमरे में गया। उनका जन्मदिन मनाया और तोहफे में मिडिल पास की सनद दी। मां इस तरह खुश हुई जैसे मुझाई हुई घास, वर्षा की फुआर से खिल उठी। उन्होंने उसे बक्से से निकालकर सोने के कड़े दिये, 'यह तेरी दुल्हन के लिए बनवाये है, सम्भालकर रख ले।'

बुंदन के घर में एक नौकरानी थी, जमीला खाला। जब उसकी मां इस घर में ब्याह कर आई थी, वह मायके से उनके साथ आई थी और उसकी सगी खाला जैसी थीं। एक दिन बुंदन ने मां से कहा, 'पुलिस में सिपाही की भर्ती हो रही है, पर आपकी सेहत ठीक नहीं है। आपको छोड़कर कैसे जाऊँ?' मां ने कहा, 'जमीला है मेरी देखभाल के लिए।' और उसे खुशी-खुशी विदा किया।

पुलिस लाइन में भर्ती हो रही थी। बुंदन -फिज़िकल फिटनेस में पास हो चुका था तभी वहां अफरा तफरी का माहौल हो गया। पता चला कप्तान की बेटी का

घोड़ा बिदक गया। जो कोई उसे काबू में करने की कोशिश करता, चुटैल कर देता। बूंदन ने गोरी मैम से कहा, 'आप इजाज़त दें, तो मैं घोड़े को काबू में करूं।'

'गो' उसने चिल्लाकर कहा।

पलक झपकते ही वह घोड़े को गोरी मैम के पास ले आया। मैम ने खुश होकर कहा, 'यंग चैप, हम तुमको दारोगा बनाता है। तुम हमको राइडिंग सिखाएगा।'

कप्तान के विशालकाय कैपसस में बना एक क्वार्टर उसे एलाट कर दिया गया। स्टार लगी वर्दी पहन कर भी वह खुश नहीं था, उसे हर पल मां की याद आती थी।

डायना उसे राइडिंग के बहाने दूरदराज़ ले जाती और प्ले ब्याय की तरह उसका उपभोग करती थी। कुछ दिनों बाद उसे लगा यह नौकरी योग्यता से नहीं मिली है। दरअसल डायना उसके आकर्षक चेहरे मोहरे, लहराते भूरे बालों, भूरी आंखों और कद काठी से आकर्षित हो गई थी। एक दिन उसने बूंदन से बेझिझक कहा, 'हम तुमसे लव करता है, शादी बनाना चाहता है।'

आम हिंदुस्तानी की तरह, सफ़ेद चमड़ी बूंदन की भी कमज़ोरी थी। उसने झट से हां कर दी। डायना ने सुनसान में बने एक चर्च में जाकर उससे शादी कर ली।

सुहाग रात को बूंदन ने मुंह दिखाई में डायना को कड़े दिए और कहा, 'यह कड़े मेरी मां ने अपनी बहु के लिए बनवाए हैं।' वह बोली, 'तुम्हारी मां विच है, हमको सोने की हथकड़ी पहनाना चाहती है।' मां के बारे में अपशब्द सुनकर बूंदन का खून खौल गया। उसने डायना के गाल पर तमाचा मारा और गांव लौट गया।

गांव पहुंचा, पता चला, कई दिन पहले मां की मृत्यु हो चुकी थी। जमीला खाला जाने के लिए तैयार थी। वह बूंदन के इंतज़ार में रूकी हुई थी। पापा ने उन्हें मां का कपड़ों से भरा बक्सा दे दिया था। जमीला खाला ने उससे कहा, 'आमना के बक्से में बहुत हिफाज़त से रेशमी रुमाल में कुछ बंधा रखा है। मैं सोचने लगी, यह क्या है, खोल कर नहीं देखा।'

बूंदन ने खाला से रुमाल ले लिया। खोल कर देखा मोमबत्ती का वह टुकड़ा था, जो मां का जन्मदिन मनाते समय बुझ गया था।

उस दिन उससे कुछ नहीं खाया गया। पूछे जाने पर यह कहकर टाल दिया कि सिर में थोड़ा दर्द है। बड़ी देर तक इधर-उधर टहलता रहा। जब सब सोने के लिए गए तब अपने कमरे में आया। उसे उदास देखकर जमीला खाला पूछने लगी, 'सिर का दर्द कैसा है?' लेकिन बूंदन ने कुछ उत्तर न दिया, चुपचाप जेब से मोमबत्ती को निकालकर उसे जलाया और उसे एक कोने में रख दिया। यह देखकर खाला ने फिर पूछा, 'यह क्या है?'

उसने उत्तर दिया- 'झिलमिला।'

खाला कुछ समझ न सकी। फिर बोली, 'बेटा, मत रो!'

'कैसे नहीं रोऊं? पापा के खौफ से मां मर गई, तुम भी जा रही हो, मैं कैसे जिऊंगा?'

यह सुनकर खाला के आंसू टपकने लगे। उन्होंने बूंदन के सिर पर हाथ फिराया और कहा, 'आमना की तरह, चाहे मैं भी मर जाऊं पर तुझे दरिंदे के पास अकेला छोड़कर नहीं जाऊंगी।'

बूंदन के कमरे में झिलमिलाती रौशनी देखकर अब्बू कमरे में आए। उन्होंने उसकी और खाला की बात-चीत सुन ली। उन्हें बेटा उस दयनीय अवस्था में लगा, जैसा फायर करने से पहले शिकार होता है। उनकी आंखों में आंसू आ गए। उन्होंने बेटे को गले लगाकर दरिंदगी छोड़ने का वादा किया। फिर बेटे को साथ लेकर बीवी की क़बर पर गए और उनके साथ किये जुल्म की माफी मांगी।

डॉ० दलजीत कौर

चंडीगढ़

बाँझ धरती

बाँझ हुई होगी
धरती की कोख
खुदी होंगी जब
उसके सीने पर
अनेक फूल-सी
बच्चियों की क़ब्रें
किस गुनाह की
मिली कैसी सज़ा
अर्थ नहीं पता जिन्हें
गुनाह -सज़ा का भी
मर जाने पर
इंसानियत के
किसकी विजय ?
कैसी विजय ?
भरी रह गई शिक्षा
स्कूली बस्तों में
रंग गई किताबें
लहू से लाल
विद्या-मंदिर बना
मौत की दरगाह
पहचान से परे मिली
शत -विशत देह
कब्र में दफ़न हुई
खुशियाँ और मुस्कान
कहानियाँ सुनते-सुनते
वे खुद कहानी हो गई
सुनाना चाहता है माली
फूलों को कहानी
पर बाँझ धरती पर
नहीं रहे फूल





प्रो. (डॉ.) संजय राय

बिरादरी

कड़कड़ाती ठंड में सिकुड़ते अजनबी अल्सेशियन बूढ़े कुत्ते को देख सड़क के कुत्ते ने पूछा, "कहाँ रहते हो? इतनी ठंड में बाहर क्यों घूम रहे हो? अपने मालिक के पास चले जाओ, वरना मारे जाओगे!" अल्सेशियन कुत्ते ने कहा, "अब वापस नहीं लौट सकता। मेरा मालिक मेरा बुढ़ापे देखकर मुझे छोड़कर भाग निकला। मैंने उसका पीछा भी किया पर वो मोटरकार में था। तुम ही बताओ अब मैं कहाँ जाऊँ?"

सड़क के कुत्ते ने कहा "यह इलाका मेरा है और मुझे अपने इलाके में किसी का आना हरगिज़ पसंद नहीं! भला चाहते हो, तो जितनी जल्दी हो सके यहाँ से दफ़ा हो जाओ...!" बूढ़े अल्सेशियन ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "इनसान ने तो अपनी जात तो दिखा दी, पर तुम तो अपनी बिरादरी वाले हो। एक कोने में पड़ा रहूँगा...रूखा-सूखा खाऊँगा लेकिन तुम्हारे इलाके पर आँच न आने दूँगा। बूढ़ा ज़रूर हूँ पर इनसानों की संगत के असर से बेअसर हूँ। अपनी बिरादरी के लिए खून बहा दूँगा। ज़रा मेरे गले का पट्टा खोल दो...अब इसमें इन्सानी बू आती है।" यह सुनते ही गली के कुत्ते ने हिंकारत से कहा, "छिः, लानत है ऐसे मालिक पर ! "और सहानुभूति एवं स्नेहभरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

गंगा

जब नाला सरांध लिए गंगा में गिरा तो पछताने लगा और कहा-"क्या करूं... मुझे तो यहां आकर अपराध बोध होता है। मैं तो चाहता हूँ कहीं जम जाऊँ ! कहीं थम जाऊँ ! पर लोग मुझे लाकर आप से जोड़ ही देते हैं।"गंगा नाले की सकुचाहट देख बोल उठी-"घबराओ नहीं ! मुझमें और तुझमें अब कोई फर्क नहीं रहा, पर लोगों का क्या होगा ? अभी भी लोग मुझे वहीं पवित्र-पावन 'गंगा' ही समझते हैं, लोगों की आस्था का क्या होगा ? "नाले ने कहा -"मैं तो लोगों को समय-समय पर सबक सिखा ही देता हूँ, याद है न पिछले वर्ष का कालाजार- निमोनिया...।" नाले का प्रतिशोध देख गंगा मुस्कुराई और बोली-" मैं पृथ्वी पर सबक सिखाने नहीं आई हूँ पगले ! मैं तो जनकल्याण के लिए आई थी, पर लोग न जाने क्या-क्या उम्मीद लगाए बैठे हैं।"

नाले को गंगा की उदारता देख पछतावे के आंसू छलक आए। उसने कहा-"सचमुच तुम गंगा हो... जगत-जननी, जीवों का पालनहार... तेरी जय-जयकार हो...!"



फायदा ही फायदा

"डायरी लिखने से फायदा?" राहुल जब भी घर आता और मुझे डायरी लिखते देखता तो यही पूछता और मैं संतोषजनक जवाब न दे पाने से हमेशा कसमसाकर रह जाता..

लेकिन उस दिन मेरे पास जवाब था ...दमदार जवाब !

"ये देखो डायरी लिखने का फायदा !" उसके आपत्ति लेने से पहले ही मैंने बताया, "25 जून की शाम मेरे अखबार वाले ने मेरा फोन माँगकर किसी को कॉल किया था। मैंने आदत के अनुसार घर आकर डायरी में उस तारीख में सारा विवरण लिख लिया था।

अगले महीने दो पुलिसवाले मेरे घर आए और बोले कि आपके नंबर से 25 जून को की गयी कॉल जिस व्यक्ति को की गयी थी उसने उसी शाम सुसाइड कर लिया था। उसको आखिरी कॉल आपके नंबर से आयी थी।

पहले तो मुझे याद नहीं आया, फिर मैंने ईमानदारी से पूरा किस्सा बता दिया।

वे नहीं माने तो यही भरी हुई डायरी उन्हें दिखाई। फिर वे संतुष्ट होकर उस पेज का फोटो लेकर और अखबार वाले का नंबर लेकर चले गये।"

"डायरी लिखने से फायदा?" अब भी राहुल मुझे डायरी लिखते पाता है तो पूछता तो है लेकिन जवाब भी खुद ही दे देता है, "हाँ, फायदा ही फायदा..."

और हम दोनों हँस पड़ते हैं।

वही बात

"शादी हुए तीन महीने हो रहे हैं अभी भी तुम अपने घर की ही बातें ज्यादा करती हो।

क्या मेरे प्यार में कोई कमी है?" नीतेश ने स्नेहा से पूछा।

"अरे नहीं यार, तुमसे या तुम्हारे घर वालों से कोई शिकायत नहीं लेकिन वो क्या है .. तुम तो साहित्यकार हो न, पता ही होगा नरेश मेहता जी ने अपने एक भाषण में कहा था, 'नदी जब समुद्र में मिलती है तो तत्काल उसमें विलीन नहीं हो जाती, उसके भीतर 80 मील यानी लगभग ...128 किलोमीटर तक बहती है। सो...वही बात, हर नारी के साथ!"



परदेस

खिड़की के शीशे पर जमी बर्फ की पतली परत के पार नीलिमा ने देखा—शहर की ऊँची अट्टालिकाएँ कोहरे में डूबी थीं, जैसे स्मृतियों के अतल सागर में कोई भूली हुई तस्वीर तैर रही हो। आकाश से गिरती हिमकणों की झरझराहट भीतर एक विचित्र सूनापन भर रही थी। उसने काँपते हाथों से मिट्टी के कुल्हड़ जैसी भूरी मग उठाई, जिसमें से भाप उठ रही थी, और पहला घूँट लेते ही स्वाद ने उसे कहीं बहुत दूर पहुँचा दिया—गंगा के घाटों पर, संध्या के उस पहर, जब आकाश के दर्पण में दीपों की टिमटिमाती परछाइयाँ तैरती थीं।

"नीलू, ज़रा देखो तो, गंगा पर संध्या की सुनहरी आभा कैसी खिल रही है!"

बाबा की आवाज़ जैसे किसी मंदिर के घंटे-सी मन में गूँज उठी। उन संकरी गलियों की गंध, मिट्टी में भीगी बरसात की सौँध, माँ के हाथों से बने गरम-गरम पराँठों की महक—सब कुछ जैसे जिए हुए कल की तरह सजीव हो उठा।

विदेश आए उसे एक दशक होने को आया था। इस धुँधले शहर की चौधियाती रौशनी में न जाने कितने दिन-रात बीत गए थे। दफ़्तर की अनवरत भागदौड़, मेट्रो की भीड़, गगनचुंबी इमारतों की निःसंग ऊँचाई—सब कुछ था, पर कहीं भीतर कोई रिक्तता थी, जो हर साँझ गहरी हो जाती। हिंदी की वे पुस्तकें, जो उसने बड़े जतन से लाई थी, अभी भी उसी सूटकेस में बंद थीं—जैसे अपनी ही जड़ों से कटकर कोई वटवृक्ष समय के थपेड़ों में ढूँढ़ होता जा रहा हो।

फिर एक दिन, भारतीय वाणिज्य दूतावास से निमंत्रण आया—हिंदी काव्य संध्या। वर्षों बाद उसने अलमारी से अपनी रेशमी साड़ी निकाली। जब उसने इसे लपेटा, तो मानो आत्मा पर जमी परतों से धूल झड़ने लगी।

सभा में एक कवि अपनी कविता सुना रहे थे—

"छूटे हुए घरों के आँगन हमें हर रात बुलाते हैं,
परदेस की सड़कों पर चलती आत्माएँ लौट नहीं पातीं।"

नीलिमा की आँखों में हल्की नमी तैर गई। आस-पास बैठे लोग भी उसी मौन वेदना में डूबे थे। एक अनकहा दुःख, जो किसी ने कभी शब्दों में पिरोने का साहस नहीं किया था।

उस रात नींद न आई। कितनी रातें उसने यूँ ही जागकर काटी थीं, पर उस रात का जागना कुछ अलग था। एक निर्णय भीतर आकार ले रहा था—वह अपनी भाषा, अपनी जड़ों से फिर जुड़ेगी। उसने अपने छोटे-से घर में हिंदी साहित्य-चर्चाओं की नींव रखी। धीरे-धीरे प्रवासी भारतीय जुड़ने लगे। उन बैठकों में केवल कविताएँ नहीं पढ़ी जाती थीं, वहाँ वे कहानियाँ साझा होती थीं, जो वर्षों से उनके भीतर सुप्त पड़ी थीं।

एक शाम, जब वह अपने बेटे आरव को हिंदी की कविता सुना रही थी, उसने भोलेपन से पूछा— "माँ, हम भारत कब जाएँगे?"

नीलिमा ठिठक गई। यह प्रश्न नहीं था, वर्षों से उसके भीतर पल रहे शून्य का उत्तर था। उसने बेटे को बाँहों में भर लिया। जो रिक्तता भीतर घर कर गई थी, वह आज जैसे शब्दों में भर गई थी।

फ़ितरा-ज़क्रात

बुज़दिली

पन्द्रह रमज़ान गुज़र चुका था। परिवार के लिए ईद की खरीदारी जोरों पर थी। इसी बीच उसे याद आया कि ईद के फौरन बाद बहन की शादी है। भाई के नाते उसका भी कुछ फ़र्ज़ बनता है। चूंकि वह पिछले चार सालों से मां-बाप से अलग रह रहा है। बहन मां-बाप के साथ है पर समस्या यह थी कि पिछले चार सालों में उसने कभी भी मां-बाप की आर्थिक मदद नहीं की। उसने अपनी पत्नी से सलाह ली और पूछा कि उसे क्या करना चाहिए? पत्नी ने सलाह दी कि ईद में कुछ नहीं तो एक-एक जोड़ा कपड़ा तो दिलाना ही पड़ेगा। दस-पंद्रह हज़ार भेज दो और कह देना कि शिफ़ा की शादी के लिए भी कुछ खरीद लेंगे। एक साथ दोनों काम हो जायगा।

उसने अपनी मां को फोन लगाया।

“अम्मी, अस्सलाम अलैकुम।”

“वालेकुम अस्सलाम बेटा, बहुत दिनों बाद हमारी याद आयी?”

“अम्मी, अब्बू का बैंक एकाउंट नम्बर चाहिए था।”

“वह किसलिए?”

“ईद आ रही है ना! तो आप लोग अपने लिए कपड़े सिला लेना और शिफ़ा की शादी के लिए भी कुछ खरीद लेना। पन्द्रह हज़ार भेज दूंगा।”

उसकी मां की कुछ देर के लिए आवाज़ आनी बंद हो गई।

“हेलो।” उसने इधर से कहा।

“बेटा, अपने बाप की उम्र जानते हो कितनी है?”

“अम्मी मुझे क्या मालूम! साठ-पैंसठ होगी।”

“हां, पैंसठ साल के हैं लेकिन वह बुढ़ा अभी भी इतना कमा लेता है कि हम तीनों की ज़रूरतें आसानी से पूरी होती हैं। बेटा तुम्हारे इस फ़ितरा (जान का सदका), ज़क्रात (माल का सदका) की रक़म पर ग़रीब-ग़ुरबा का हक़ होता है। उन्हें देगा तो सवाब भी मिलेगा और दुआएं भी।”

“अम्मी.....!”

दूसरी तरफ से उसकी मां ने फोन काट दिया।

उसके सामने से टीसी गुज़रा तो उसका मन हुआ कि उसे रोके और सब कुछ सच-सच बता दे पर यूं ही बैठा रहा उस दिन की तरह चुपचाप देखता हुआ। लेकिन यह उलझन उसे अन्दर ही अन्दर खोखला बना रही थी। उठते-बैठते, चलते-फिरते वही घटना उसके दिमाग में घूम-फिर कर आ जाती।

वह रेलवे प्लेटफॉर्म की बेंच पर बैठा 9.19 की लोकल ट्रेन का इंतज़ार कर रहा था इसी बीच 8.55 की एसी लोकल आ गयी। उसके सामने एक बीस-बाइस साल का नवजवान कंधे पर बैग टांगे खड़ा था। ट्रेन का गेट खुलते ही वह ट्रेन में चढ़ा पर जाने क्या सोचकर ट्रेन से उतर कर प्लेटफॉर्म पर आ गया। अभी वह दो कदम आगे बढ़ा ही था कि टीसी ने रोक लिया। उसने कुछ बात की। नवजवान ने टिकट निकाल कर दिखाया लेकिन टीसी टिकट के साथ लड़के को भी लेकर अपने आफिस की तरफ़ चल दिया। उसे समझते देर न लगी कि लड़के के पास जनरल डिब्बे का टिकट रहा होगा। उसके दिल में आया कि टीसी को बताए कि सर, इसने इस लोकल में सफर नहीं किया है बल्कि यहीं से चढ़ा था और फौरन उतर भी गया। मुमकिन था कि उसके बोलने से टीसी लड़के को छोड़ देता पर वह बोल न सका।

उसका मन फिर से बेचैन हो गया। ऐसा क्यों होता है कि हम ग़लत होते देख रहे होते हैं फिर भी बोल नहीं पाते। क्या संवेदनाओं का मर जाना इसी को कहते हैं? वह चार दिनों से इसी सवाल का जवाब ढूंढ रहा है। उस लड़के को बचाया जा सकता था पर नहीं बचा पाया। फिर उसके मन ने समझाया— तुम अकेले नहीं हो। इस दुनिया में बहुत सारे गुनाह, मौतें हमारी बुज़दिली की वजह से होती हैं। हमारी जेलें बेगुनाहों से भरी हुई हैं। तमाम गुनाह हमारी आंखों के सामने होती हैं और हम अपनी बुज़दिली के कारण बोल नहीं पाते।

प्लेटफॉर्म पर लगे स्पीकर बोल उठे— ‘प्लेटफॉर्म क्रमांक दो पर आने वाली 9.19 की छत्रपति शिवाजी महाराज टर्मिनल जाने वाली धीमी लोकल है।’ उसकी ट्रेन आ गयी। उसने ज़ोर से सिर को झटका दिया जैसे दिमाग में उमड़-धुमड़ रहे विचारों को झटक कर गिरा देना चाहता हो। वह उठ खड़ा हुआ। उसके दिल ने फिर कहा — इस दुनिया में तुम अकेले नहीं हो! उसने ज़ोर की सांस ली और ट्रेन पर सवार हो गया।



लघुकथा



उषा कुशवाहा

जमशेदपुर (झारखंड)

राम मूरत 'राही'

इंदौर - 452009 (म.प्र.)

पापा

स्नेहा दोपहर को घर के कामों को निपटा बिस्तर पर लेटी सोने का प्रयास कर रही थी। नींद से उसका नज़दीक का रिश्ता कभी नहीं रहा, बस निद्रा देवी की इतनी कृपा है कि, उसका स्वास्थ्य ठीकठाक रह सके। पर इन दिनों वह भी कुछ नाराज़ सी है, कसूर उनका भी नहीं, उसने स्वयं ही आंखों में न जाने किसकिस को जगह दे रखी है... यादें, सपने, आंसू और भी न जाने क्या-क्या.... अब ऐसे में भला नींद के लिए जगह ही कहाँ बचती है।

दोनों बच्चे पढाई के सिलसिले में पिछले दोतीन सालों से दूसरे शहर में रह रहे हैं। घर में बस तीन लोग ही थे, वे दोनों पतिपत्नी और स्नेहा के वृद्ध पिता, जो बुढ़ापे और जोड़ों के दर्द के कारण ठीक से चलफिर पाने में असमर्थ थे।

जीवन के रूप भी कितने निराले हैं.... इंसान जब जन्म लेता है उसे जीवित रहने के लिए जल, दूध और हवा से भी पहले आवश्यकता होती है, प्यारदुलार और ममता भरे गोद की! तब उसका रूप इतना कोमल, सुंदर और प्यारा होता है कि उसे जन्म देने वाले माता पिता ही नहीं बल्कि परिवार, रिश्तेदार यहां तक की अडोसपडोस के लोग भी गोद में तो क्या पलकों पे उठाए फिरते हैं। इन्हीं अपनत्व भरे गोद में पल कर अपने नन्हे नन्हे कदमों से शनैःशनैः चलना सीखता है, फिर दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाकर दौड़ पड़ता है। फिर वह स्वयं इतना सक्षम हो जाता है कि, कुछ जिंदगियां उसके गोद में भी पलती हैं। उनका भार वह अपने पुष्ट कंधों पर उठाता है।

जिस तरह दिन जीतनी भी चटकीली और रौशनी भरी।

जब से

सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त होने के पश्चात मैं अपने गृहनगर शिफ्ट हो गया। पहली फुरसत में मैं अपने एक कॉलेज के समय के मित्र राघवजी से मिलने उनके घर जा पहुंचा। डोरबेल बजाया तो अंदर से आवाज आई, 'कौन है?'

आवाज राघवजी की ही थी। मैंने कहा - "मैं हूं, राजेश।" "आ जाओ भाई, दरवाजा खुला है।"

मैं अंदर गया तो देखा वह अकेले हॉल में सोफे पर गुमसुम बैठे थे। मुझे देखते ही वह लड़खड़ाते हुए उठ खड़े हुए और मेरा गर्मजोशी से स्वागत करते हुए बोले - "आओ बैठो और बताओ क्या हाल है?"

मैंने कहा - "सब ठीक है। तुम बताओ तुम्हारे क्या हाल हैं? क्या अभी भी दर्द नहीं होता है?" किसी फिल्म का यह संवाद मुझसे और दूसरे मित्रों से अक्सर वह बोला करते थे। यह संवाद उनका कॉलेज के दिनों में तकिया कलाम बन हुआ था।

वह उदास होते हुए बोले - "अब तो होता है यार..."

"अरे यार! जब दर्द जवानी में नहीं हुआ, तो भला अब बुढ़ापे में क्यों हो रहा है?" मैंने मुस्कराते हुए पूछा।

उनकी आंखें आंसूओं से भर आईं। वह अपने आंसूओं को पोंछते हुए बोले - "यार! मेरे पास भगवान का दिया सब कुछ है, लेकिन बच्चों का साथ नहीं है। बेटे-बहू, बच्चों को लेकर हफ्ते भर के लिए मुझे अकेला छोड़कर दूर पर गए हुए हैं। मेरे घुटनों में दर्द रहता है। चलने फिरने में दिक्कत होती है। उन्हें मेरी तनिक भी चिंता नहीं है। कोई भी कुछ पल भी मेरे पास नहीं बैठना चाहता। मैं उनसे बातें करने के लिए तरस जाता हूं।" इतना कहकर वह बच्चों की तरह रो पड़े और फिर सिसकते हुए बोले - "यार! जब से पत्नी का स्वर्गवास हुआ है, तब से मैं अपने आप को अनाथ-सा महसूस कर रहा हूं।"



चाँदनी रात...

चाँदनी रात की दूधिया उजास,
धरती डूबी हुई चिरनिद्रा में—
शांत, निस्सीम, क्लांत।

युगों-युगों की नियत गति,
और फिर यह गहन विश्राम।

घनघोर मौन को तोड़ती
टिटहरी की टिटिहूँ-टिटिहूँ बोली—
कि स्वप्नलोक में जैसे तुम उतरती हो
धीरे-धीरे, दबे पाँव।

परियों के विचरण की यह रात—
गहन, गूढ़, रहस्यमयी रात!
और रुई के फाहे-सी हल्की
छू जाती है तुम्हारी याद।

सुहावनी रात...

ये रात, सुहावनी रात,
सितारे अपलक तकते हुए
निहारते हैं धरती को
चुपचाप।

मौन की यह भाषा
सिर्फ समझता है कवि,
कि चाँद की सफ़ेद, मीठी छुआन से
सिहर उठी है वसुंधरा
अभी-अभी।

यह कौन है जो टाँग देता है नित
स्वच्छ, साफ़ आकाश में
चाँद-तारों को झिलमिल?

यह कौन है जो रचता है
इतनी सुंदर रात?

न जाने कितने युगों से
मन ढूँढ़ता है उस चित्रकार को —
सर्जना के अनुपम सूत्रधार को।

रात्रि की विभीषिका... अंतिम पहर...

यह रात है कि जिसके आते ही
खाली हो जाता है पूरा का पूरा शहर।
दिन में जिस सड़क पर
दौड़ती-भागती ज़िंदगी दिखती है,
रात होते ही छा जाता है
एक अजीब सा सन्नाटा।

दिनभर सोए हुए कुत्तों के तेज़ कान
रात होते ही जाग जाते हैं,
हो जाते हैं और भी सतर्क।
एक छोटी-सी आहट पर
भौंकते हैं कुत्ते,
कुछ तो आलसी फिर भी सोए रहते हैं,
नहीं उठाना चाहते चुनौतियों का भार,
मुँह छिपा लेते हैं देह में सिकुड़कर।

गहरी, काली रात में
पुलिस की गश्त—
गूँजता है हवा में सायरन का साँय-साँय।
रात के लुटेरे हो जाते हैं सतर्क,
टल जाता है
कोई छोटा-मोटा अपराध।

मगर यह काली रात—
एक भयानक-सी रात,
भेड़ियों के लिए शिकार की रात।
जिसकी डरावनी-सी आवाज़
सिर्फ़ आम लोग ही नहीं डरते,
डरती है यहाँ की पुलिस भी।
बंद कर लेते हैं लोग अपने-अपने घरों के
दरवाज़े।
काम पर गई लड़कियाँ
शाम होते ही लौट आती हैं घर,
इस अंधेरे में नहीं निकलतीं
लड़कियाँ सड़कों पर।

भेड़िए के आतंक में डूबी हुई,
यह भयावह, घनघोर काली रात—
अपराध के चरम-उत्कर्ष की रात।

यह रात — शांत, ठहरा हुआ-सा मौन,
और कवि स्वयं के भीतर झांकता हुआ
चला जाता है निःशब्द,
अकेले-अकेले, गुमसुम
विचारों की गहराई में धंसे हुए।

आसमान से छनकर आ रही चाँदनी,
मार्ग प्रशस्त करती हुई,
खिलखिलाती हुई, चमचमाती हुई—
कविता की पंक्ति
कवि-मन में उपजाती हुई।

रात का यह सन्नाटा—
पसरा हुआ रहस्य,
झींगुरों के गीत का लय,
दूर भौंकते स्वान,
सफ़ेद पर्दे-सा कोहरे का धुँध।

मौन ओढ़कर सजी है रात—
मिलन की रात,
नव-सर्जना की रात।

इस सघन, शांत रात्रि में
गूँजता है संवेद-स्वर,
रागिनी-अलाप।

बहुत देर तक इस रात्रि में अकेले
भटकते हुए
आखिर कवि को मिल ही गया
कालजयी कविता का भाव—
निश्छल, सुरमयी रात्रि के
अंतिम पहर में।

सुरेन्द्र पाल सोनी 'काकड़ौद'

मेल आईडी : sonisur81@gmail.com

शिक्षक, चंडीगढ़



खून टपकता है...

मैं एक कवि हूँ
और देश-दुनिया पर लिखना
मेरा फर्ज है

तो बात इस तरह है
कि जो मेरा एक घर है
उसके पूर्व-पश्चिम में
मेरे ही दो भाइयों का
अब रह-बसर है!

मेरी यही दुआएँ हैं
कि वे दोनों आबाद रहें!

लेकिन बात दूसरी है
कि बँटवारे के वक्त
जो कुछ भी सामान
था उनके हिस्से आया
उसके अतिरिक्त
अपनापन ढूँढती हुई
कुछ नाजुक मोमबत्तियाँ भी
छूट गई थीं उनके पास
जिन्हें जलाते हैं वे
एक-एक कर धीरे-धीरे
जिनसे मोम नहीं टपकता
पिघल-पिघल कर
बस खून टपकता है
ढहते हैं मांस के लौथड़े
और जिन्दा इंसान भभता है

वे बार-बार अधर में ही
बुझाते हैं मोमबत्तियाँ
और फिर-फिर जलाते हैं
मासूम मोमबत्तियाँ!
और बेदर्दी से उनके
पपड़िले आधारों को भी
खुरच-खुरच उतरते हैं

मगर वे
इन मोमबत्तियों की चिताएँ
एक-एक करके ही जलाते हैं
और प्रकाश के लिए नहीं
बल्कि उन्हें फकत
जलाने के लिए जलाते हैं

मैं एक कवि हूँ
और मेरा फर्ज है
देश-विदेश के मुद्दों पर लिखना!

मैं उन मोमबत्तियों के
बार-बार जलाने-बुझाने को
रोकना चाहता हूँ,
और उन्हें अपने घर
वापस लाना चाहता हूँ
कि वे रह सके महफूज
या केवल तब जलाई जा सकें
जब हो बस उजालों की ज़रूरत!

मेरे भाइयों को
यह समझना होगा
कि स्वायत्तता
और संप्रभुता के अलावा भी
कुछ ऐसे मुद्दे हैं
जिन्हें इंसानियत की नज़र से ही
देखा जाना चाहिए!

नाराज़गी के मोतियाबिंद

उन्हें मेरा अक्स
कुछ धुँधला नज़र आता है
और मुझे उनकी नज़र
लगभग उतनी ही धुँधली

मेरे और उनके दरमियाँ
फ़ासला कुछ ज्यादा नहीं है
इसलिए हमारे ये नज़रिए
जरा भी बनावटी नहीं है

बल्कि एक सच है
कि मौसम साफ नहीं हो रहा
गलतफहमी के कोहरे की
एक धुँधली-सी चादर फैली है
जो वक्त के साथ-साथ
ढक रही है हमारे एहसास
और दरमियाँ ठंडक भी बढ़ रही है

हमें जल्द-से-जल्द
बेहद ज़रूरी है-
एक लाज़िम आफताब
एक सुनहरी रोशनी
एक टुकड़ा धूप
एक किरण विश्वास

आँखों को
रोशनी की ज़रूरत होती है
उनकी दूधिया आकाशगंगा के
सबसे छोटे वृत्त में भी
एक प्रतिनिधि सूरज रहता है
जिसके दुरुस्त रहने से
हमारी नाराज़गी के मोतियाबिंद
और दरमियाँ धुँधलाते नज़रिए
पूर्णतया उच्च-परिभाषित रहते हैं!





नंदन पंडित

इटियाथोक, गोण्डा-उत्तर प्रदेश

रेती में बसंत

रेती में आया बसंत सखी!

बरसों की पूरी साध हुई
संगम - रेती आबाद हुई
टाटी के महक उठे गोबर
कुम्हड़े पक गए छप्परों पर
टेसू, गुलमोहर, कचनारें
गेंदा फूले आँगन - द्वारे

मिर्चों के फव्वे लाल देख
खाने शुक उड़े अनंत सखी!

तुलसी चौरे पर बन - ठन के
सूरज की किरनें छन- छन के
कलियों का घूँघट खोल रहीं
मारुत में खुशबू घोल रहीं
सरसों की चूनर ले भागा
मधुकर मधु पी आधा- आधा!

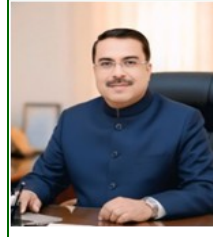
इस मटर कभी उस अरहर पर
उड़ जाती तितली तुरंत सखी!

डांडों पर सुर्ख हुए सेमल
झरबेर, बेर के मीठे फल
गेहूँ की स्वर्णिम बाली में
जीवन भर- भर कर थाली में
जौ, चना पवन के झोंके में
झूले हैं पलना धोखे में!

अलसी हौले से बलखाये
दुल्हन ज्यों सम्मुख कंत सखी!

आमों पर लगे बौर भूरे
पशुओं के रोम झरे पूरे
खरगोशों ने कुलांच भरी
महि देख बैगनी, लाल, हरी
महुआ टपके टप-टप के री!
कोयल कहती दे- दे फेरी-

घाघरा - सरयू की रेती के
अनगिन किस्से मनगढ़ंत सखी!



अनिल कुमार मिश्र

राँची, भारत

गाँव

जब कौआ गुटर-गुटर-गूं बोले
और बोले कबूतर काँव
छोड़ शहर घर भागो भैया
अपना प्यारा गाँव।

बड़े रंग हैं, ढंग अजब हैं
अलग-अलग है बोली
रंग बदलता रोज है इंसानों
निशि दिन इनकी होली।

जहाँ कहीं भी स्वार्थ छिपा हो
कौआ बदले बोली
काँव करे जब भी कबूतरी
मन में रंग कई, रोज है होली।

मन जैसा है तन वैसा हो
चेहरा भी हो निश्छल
गाँव-शहर पवित्र हो जाए
नहीं कहीं हो छल!

बोली मीठी मन में विष है
स्वार्थ हलाहल की हैं लहरें
गाँव-शहर सब हैं खतरे में
कैसे हम संस्कार सहेजें।

गाँव मे जब तक काँव-काँव है
कौए की आवाज
तब तक ही दिल निश्छल सबका
सुंदर है सब साज़।

बदले स्वभाव जब बोली बदले
समझो चाल-चरित्र
गाँव-शहर की खोती गरिमा
दुःख है, चित्र-विचित्र।

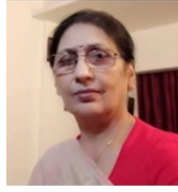
चलो पुराने गाँव चले हम
जहाँ छोटा-सुंदर व्यापार
हर दिल में नेह-स्नेह का जादू
मधुर-मधुर व्यवहार।

गुटर-गुटर क्यों बोला कौआ
यही चिंतन है, मंथन है
कबूतरी काँव क्यों बोली
मंथन है, चिंतन है।



निरुपमा सिंह

जनपद बिजनौर (उत्तर प्रदेश)



एक आवाज़ उठी है

सत्ता के गलियारों से
जो आवाज़ उतरती है,
क्या वह आखिरी पंक्ति के
कानों तक पहुँचती है?

फ़ाइलों के बोझ तले
दबी न रह जाए पुकार,
कहीं कागज़ भारी न कर दें
मानवता का भार।

सत्ता के गलियारों में
बहसों तो रोज़ हुई,
पर भूखे बच्चे की थाली
आज भी ख़ामोश रही।

विकास के ऊँचे सपने
पोस्टर तक सीमित हों,
जब तक ज़मीन की सच्चाई
नींव में शामिल हों।

सत्ता के गलियारों से
जब फैसले बाहर आएँ,
तो नफ़रत नहीं, भरोसा
अपने साथ लाएँ।

भाषा न आग उगले
ना बाँटे मनुष्य-मन,
हर शब्द में झलके बस
संविधान का वचन।

सत्ता के गलियारों में
यदि डर ने घर कर लिया,
तो सच की आवाज़ों ने
चुप रहना सीख लिया।

समय पूछता है अब—
कब बोलेगा जन-स्वर?
कुर्सी से उतर कर कब
सुना जाएगा जन का स्वर?

सत्ता के गलियारों से
जब सेवा की राह निकले,
तो थकी हुई उम्मीदें
फिर से खड़ी हो चलें।

समसामयिक यही माँग है—
शब्द नहीं, संवाद हो,
राज्य नहीं, जनता ही
लोकतंत्र की पहचान हो।

प्रोमिला पुन्नू भारद्वाज

शिमला,



अनबुझ

फैला है कुछ-कुछ
ब्रह्माण्ड के पटल पर
कितना अनबुझ,
अनबुझ जितना
सूर्यास्त की बेला,
लालिमा का
कालिमा में
स्वतः लोप होना,
अति अद्भुत
जीवन व सत्य सम,
दोनों का आमना-सामना,
छोड़ना एक दूसरे को,
कभी बढ़ के थामना,
यदा-कदा जानबूझ कर
अनदेखा करना,
सूरज की किरणों का
कभी सिमट के,
अंतरिक्ष की ओट में
मुँह छुपाना,
होते ही भोर
धरा पे पसरना,
चमकाना कोना-कोना
तन-मन में घोर शोर
मचा-मचा, उकसाना
तजने को स्वप्न डोर,
करने को कार्य कुछ
अर्थहीन या सार्थक,
आँकेगा अन्ततः
सृष्टि का नियन्त्रक
वो अनबुझ,
उतना ही जितना
ब्रह्माण्ड के पटल पर
फैला कुछ-कुछ,
तरंगित करता
कण-कण,
अचम्भित अंग-अंग,
रहे अंग-संग
सुखद अनुभूति बन
वो अनबुझ।



मोनिका डागा "आनंद",
चेन्नई

स्वास्थ्य श्रेष्ठ संपदा

पुरानी आदतों के अभ्यस्त,
इतनी चिंताओं में हो ग्रस्त,
अच्छा स्वास्थ्य श्रेष्ठ संपदा,
जिंदगी में अपने रहो मस्त ।

दिनचर्या न हो अस्त-व्यस्त,
वरना हो जाओगें रोगग्रस्त,
फायदा कम नुकसान ज्यादा,
चुस्त-दुरुस्त रहो मुक्तहस्त ।

चाहे कितने भी हो व्यस्त,
ढेरों जिम्मेदारियों से त्रस्त,
रखो सेहत को बकायदा,
बिमारियों को करो ध्वस्त ।

जिंदगी ने किया हो पस्त,
और हालात भी हो खस्त,
फिर भी न तोड़ना वादा,
तन-मन स्वस्थ हो समस्त ।

हर पल "आनंद" अलमस्त,
स्वस्थ्य प्रसन्न मन जबरदस्त,
करो तन मन धन से हर सेवा,
शीश पर माई का वरदहस्त ।

जो डर गया

जो डर गया समझो मर गया,
तिनका-तिनका टूटकर बिखर गया,
इच्छा शक्ति हारी खड़ी की बीमारी,
आघात ऐसा जीवन "आनंद" लूट गया ।

अरे अरे अरे ! तुमसे ना हो पाएगा,
डर कठपुतली सा नाच नचाएगा,
जिंदगी की हर संभव खुशी छीन,
रोज मौत के करीब लेता जाएगा ।

जितना डरोगें दुनिया डराती जाएगी,
नींद चैन सारा पल में छीन ले जाएगी,
बिना खुद जले होए ना उजाला,
तकदीर खुद के हाथों ही संवर पाएगी ।

इस डर को डरा कर आगे बढ़ना है,
जो नहीं हो सकता वही तो करना है,
मगरूर दुनिया करती रहे छींटाकशी,
जीवन आनंद में फर्क नहीं पड़ना है ।

याद रखना डर के आगे जीत है,
बेशकीमती जिंदगी का यही गीत है,
बनकर आनंद आनंद लूटाते चलो,
कर्मों पर निर्भर जीवन संगीत है ।

समय

हर पल बड़ा, बलवान है, सबका समय, भगवान है।
मेहनत से, मुस्कान है, सुंदर बने, दिनमान है॥

हिम्मत कर, विश्वास रख, मेहनत का, परिणाम चख।
रख हौसला, पाले विजय, कर साधना, हो दिग्विजय॥
छू ले गगन, सपना सजा, श्रम गीत गा, बाजा बजा।
सीढ़ी बना, विस्तार दे, नूतन सपन, आकार दे॥

सम्मान कर, तू काल का, चलते समय, गतिमान का।
थमता नहीं, डरना नहीं, बाधा कहीं, मुश्किल कहीं॥
राही कदम, रखना सही, मंज़िल मिले, इच्छित वही।
हर पल यहाँ, तो दौड़ हैं, सुख-दुख समय, का जोड़ हैं॥

कमजोर क्यूँ, इतना बना, तू है निडर, उर को मना।
होगी विजय, इस प्यास की, आत्मिक सुखद, विश्वास की॥
जगती सदा, आशा वहीं, जो धैर्य को, छोड़े नहीं।
तू समझ लें, इस बात को, पा सुखद सी, सौगात को॥

बीता समय, वापस कभी, आता नहीं, रोते सभी।
मौका मिले, कल हों नहीं, चिंता सदा, रहती वहीं॥
राहें बने, व्यवहार से, स्वीकृति सहज, स्वीकार से ।
आगे निकल, छोड़कर दुख, "आनंद" भर, जीतकर सुख॥

तू मत बिखर, कर प्यार कुछ, करता समय, ही कुछ न कुछ।
भीतर जगा, उस चाह को, तू सीख जा, उस वाह को॥
, गतिमय समयपल-पल घटे ,खुश हो चला ,संकट छोटे।
कीमत समझ ,कर जो चलें ,शुभ ही सदा ,प्रतिफल मिलें ।



नवगीत



राजपाल सिंह गुलिया

तहसील व जिला - झज्जर (हरि.)

बेच रहे पीतल के गहने,
सोने चढ़ा मुलम्मा।
अपनी क्षीण बिनाई लेकर,
लड़े कहाँ तक अम्मा॥

कडुए को मिष्टान्न बता कर,
करें देव को अर्पण.
धूल झोंक कर आँखों में ये,
बेचें धुँधले दर्पण.
कोस रहे अब पाँव स्वयं को,
कर -करके परकम्मा.

अन्तर्मन की आँखों पर है,
चढ़ा भरम का चश्मा.
रहें प्रयास उतारू हरदम,
करने नया करिश्मा .
दो - दो चाहे, वो भी चुपड़ी ,
अब हर एक निकम्मा.

हमें खोजना होगा गुपचुप,
कलयुग के कंसों को.
नीर क्षीर विवेक गँवा चुके
इन मुंसिफ हंसों को.
न्याय कहाँ है माँगें मिलता,
सोच रहा है धम्मा.

दोहे



नरेंद्र कुमार

जिला गुरुग्राम (हरियाणा)

बहती माँ की आँख से ,जिस दर असुवन धार ।
खुशहाली फिर किस तरह , आए उसके द्वार ॥

हिन्दी मेरी जान है, हिंदी मेरी शान।
हिन्दी से ही हिन्द की, है जग में पहचान॥

लड़े वीर फाँसी चढ़े , सहे कष्ट दिन रात।
आज़ादी की तब मिली, हमको यह सौगात॥

जन ये कैसे हिन्द के, हुए देख लो आज।
निज भाषा को भूलकर,करे गैर पर नाज॥

सपना विकसित राष्ट्र का, हो कैसे साकार।
फैला जब तक देश में, है ये भ्रष्टाचार॥

दुर्योधन के आजकल, वंशज कितने आज।
द्रुपद सुता की बोलिए, कौन बचाए लाज॥

सात जन्म के साथ की, लगती बात मजाक।
रिश्ते हर दिन टूटते ,होते खूब तलाक॥

मंदिर मस्जिद चर्च में, ढूँढे क्यों नादान।
कण-कण में हरि व्याप्त जब, कहे यही ईमान॥

साथी इस संसार का, अजब-गजब दस्तूर।
सुख में थे जो पास वो, दुख में गए सुदूर॥

महल गगनचुंबी यहाँ, देखो वहाँ कुटीर ।
अपने भारत की कहो, ये कैसी तस्वीर॥



नवीन माथुर पंचोली की ग़ज़लें

(1)

झूठ सलीक़े नाम कमाया जाएगा।
अफ़वाहों से दिल बहलाया जाएगा।

हमसे लेकर ही देंगे हमको लेकिन,
हम पर ये अहसान जताया जाएगा।

जितने उनकी बातों में आये उनसे,
लोकतंत्र का खेत जुताया जायेगा।

दोनों खेमों छुपकर हाथ मिलाएंगे,
हमको आपस में लड़वाया जाएगा।

लाभ मिलेंगे झूठों को ही सरकारी,
सच्चाई का हक़ झुठलाया जाएगा।

वोट ख़रीदी की साज़िश में दे देकर,
लोगों को कमज़ोर बनाया जाएगा।

तहज़ीबी पर होगी चुप्पी-ख़ामोशी,
गुस्ताख़ी पर ढोल बजाया जाएगा।

(2)

बातों में जब खींचातानी।
कहना- सुनना है बेमानी।

वो आगे, हम पीछे कैसे,
सोच हमारी है बचकानी।

जैसा बोया, काटा वैसा,
फिर इसमें कैसी हैरानी।

जीती बाजी हार गए तो,
शर्म से होते पानी-पानी।

वो ही न हो पाए अपने,
रक्खी जिनसे आना-कानी।

हाल छुपाकर हमअपनों के,
करते औरों की निगरानी।

(3)

बिन कारण उस रस्ते जाना रहता है।
जिस रस्ते कोई पहचाना रहता है।

आँखें जितना तीरों को समझाती हैं,
उतना उनका ठीक निशाना रहता है।

सिर पर अपने भारी हो सोचें जितनी,
मन को उतना बोझ उठाना रहता है।

जीवन एक सफ़र जैसा है कुछ इसमें,
मिलना-जुलना, खोना-पाना रहता है।

जिनसे अपने सीधे रिश्ते- नाते हैं,
साथ उन्हीं के पीना-खाना रहता है।

लोग वही सब माचिस लेकर चलते हैं,
जिनका मक़सद आग लगाना रहता है।

(4)

पुरानी वही तो रिवायत रहेगी।
घटा की हवा से अदावत रहेगी।

निभाये शराबत, जताये शराफ़त,
यही हर किसी की शिक्कायत रहेगी।

अभी तक कही या सुनी जा रही है,
जुबाँ पर वही तो कहावत रहेगी।

नहीं कोई मुश्किल रहे इस सफ़र में,
बड़ों की हमें कुछ हिदायत रहेगी।

रखेगा यहाँ जो भुलावे, छलावे,
उसी की हमेशा सियासत रहेगी।

कहानी यही है हमेशा दिलों की,
वफ़ाओं के हिस्से तिजारत रहेगी।

(5)

ग़म जितने मैख़ाने कम हैं।
होठों से पैमाने कम हैं।

भीड़ जमा है इतनी लेकिन,
लोग यहाँ पहचाने कम हैं।

हाल इश्क़ में पहले जैसे,
राँझे से दीवाने कम हैं।

बच जायेंगे कहना मुश्किल,
उनके पास बहाने कम हैं।

उन पर हम भरमाये कैसे,
जो रस्ते अंजाने कम हैं।

सच्चाई है उनमें थोड़ी,
जो रिश्ते बचकाने कम हैं।

(6)

नयी पहचान है शायद।
अभी अंजान है शायद।

सफ़र की राह में थोड़ा,
अभी नादान है शायद।

सुना है शोख चेहरे पर,
खुशी आसान है शायद।

सभी की मानता है सब,
भला इंसान है शायद।

यहाँ आँखें लगी है पर,
कहीं पर ध्यान है शायद।

किसी को सामने पाकर,
हुआ हैरान है शायद।

नया होकर पुराना सा,
छुपा अरमान है शायद।



डॉ नीना छिब्वर

जोधपुर

मोगरा

आसपास हो जब
भीनी मनहर सुगंध
हवा में हो दीवानगी
समझ लेना मोगरा महके
श्वेत वर्ण में नन्हा पुष्प
हरियल पते मेरा झूला
तन-मन होते प्रसन्न
बस रख लो मुझे संग
अवसाद उदासी मेरी दुश्मन
आनंद उत्साह प्रेम मेरे सखा।

रात की रानी

नीला आसमान मेरा साथी
मैं तारों से खूब बतियाती
चमके जैसे नभ में तारे
मैं भी अपना रूप दिखाऊं
शुभ्र वर्ण की मेरी काया
मंद सुगंध से रचूं माया
असंख्य पुष्पों से लदी
सब के मन में रहूं बसी
चांद और चांदनी मेरे सखा
मुग्ध अद्वितीय गंध रची बसी।

पारिजात

कृष्ण प्रिय दुनिया जाने
दुर्गा के चरणों में त्राण
जैसे बांसुरी करे जादू
मेरी सुगंध करे बेकाबू
शांत धीर मंथर गति मेरी
कोमलांगी है मेरे गात
भर लो मुझे आंचल में
मन में आए खुशी अपार
केसर थोड़ा छिड़का तन पर
मेरा जीवन है बेमिसाल।



श्रीमती वेदवन्ती 'वेदी'

बुण्डू, राँची, (झारखंड)

प्रकृति

नव दुल्हन सी हुई प्रकृति, बसंत-ऋतु के आगोश में।
विविध-रंगी फूलों को देख, भौरे भी नहीं हैं होश में॥

बड़े सुहाने लगने लगे हैं, पेड़ों की नूतन हरियाली,
वन उपवन, फलों के वृक्ष, फूलों से लदे डाली डाली।
खेतों में गेहूं की बालियां, पानी सा हिलोरे लेते हैं,
इस सुंदरता को देखकर, इतराता उपवन का माली।
अमराईयों से रस पी-पी मधुमक्खियां हैं मद्होश में।
नव दुल्हन सी....

बसंत-ऋतु के आते ही हर-तरफ छा गई है बाहर,
आम, अमरूद, नींबू फूले, फूले मुनगे और कचनार।
पलाश और गुलमोहर से तो, नजरें ही नहीं हटती है,
घर, गुलशन से कानन तक, फूल फूले विविध प्रकार।
इतने निराले नजारें हों जब, मन क्यों ना हो जोश में॥
नव दुल्हन सी.....

ना गर्मी ना सितलहर, अभी मौसम बड़ा सुहाना है,
बसंत-पंचमी, शिवरात्रि और होली का भी आना है।
कंठ खुली कोयल की, मधुर स्वर गूंजी फिर बागों में,
हर हिय में प्रेम उमड़ रहा, हर लबों पे मधुर तराना है।
मन चाह रहा इस पल को भर ले, स्मृतियों के कोष में॥
नव दुल्हन सी....

ये अमराई कल फल बनेंगे, डालियां झुक जाएंगे,
बड़े मजे से पके आम, जामुन, लीची हम खाएंगे।
इस ऋतु में खिरे, तरबूज, ककड़ियां बोए जाते हैं,
इन्हीं सब को खाकर हम, गर्मियों में राहत पाएंगे।
प्रकृति हमें कितना कुछ देती, रहती है पारितोष में।
नव दुल्हन सी....





मनोज शाह मानस

नई दिल्ली

आओ थोड़ा जी लेते हैं

आओ थोड़ा जी लेते हैं ।
मन की आंसू नैनो से पी लेते हैं ॥

मरना तो लगा ही रहेगा यहां
किसी के नम आंखें पोंछकर
लबों पे उसके हंसी देते हैं
सुनो अब थोड़ा जी लेते हैं ।

आओ थोड़ा जी लेते हैं ।
मन की आंसू नैनो से पी लेते हैं ॥

अपने सुख दुख अपनी
खुशियां ही देखी है सदा
अब किसी के अंधेरे घर को
थोड़ी सी रोशनी देते हैं ।

आओ थोड़ा जी लेते हैं ।
मन की आंसू नैनो से पी लेते हैं ॥

रंगीन महंगे लिबासों से सजे
सजी रहती हो तुम फैशन में
चलो आज किसी के तार तार
कपड़े भी सी देते हैं ।

आओ थोड़ा जी लेते हैं ।
मन की आंसू नैनो से पी लेते हैं ॥

पूण्य भी कुछ मिल जाएगा
यही सोच कर आओ
किसी के लबों पर देकर नग्मे
उसकी उदासी लेते हैं ।

आओ थोड़ा जी लेते हैं ।
मन की आंसू नैनो से पी लेते हैं ॥

आरजूएं उनकी भी हो जाए पूरी
सपने जो कभी देखते नहीं
उन्हें आज जिंदगी से भरी
खुशियों की जमीं देते हैं ।

आओ थोड़ा जी लेते हैं ।
मन की आंसू नैनो से पी लेते हैं ॥

एक तूफान

एकाएक एक तूफान आता है
एक आंधी अनुभूतियों का...
हाथ बढ़ाते हैं
बाहें फैलाते हैं...
सदियों से रुका हुआ
एक यथार्थ के लिए...!

रोकना चाह रहा हूं मैं
चाहनों के उड़ान मेरा
जो तुम्हारे होकर ही
उड़ता है...,
तुम्हारे साथ नहीं उड़ता...!

क्या फर्क है...?
भटक जाने में...,
और बहक जाने में...!

खेल मन का ही है
खिलाड़ी भी मन ही तो है...!!



सीता की अग्नि

क्या आपने कभी सोचा है,
एक स्त्री को न्याय चाहिए या प्रमाण?
क्या उसकी आत्मा की आग
किसी अग्निकुंड में बुझाई जा सकती है?

यह कहानी केवल देवताओं की नहीं,
यह धरती की बेटियों की साँसों में
आज भी धड़कती हुई कहानी है।

सीता,
कोई मिथक नहीं,
वह वह आवाज़ है जो सदियों से पूछती रही:
“मैं निर्दोष हूँ, तो मुझसे शक क्यों?”

वन का रास्ता उनके लिए आदेश था,
त्याग उनका कर्तव्य बना दिया गया।
प्रेम उन्होंने माँगा नहीं,
निभाया,
और बदले में पाए संदेह और सवाल।

अशोक वाटिका में
रावण की नहीं,
व्यवस्था की परीक्षा चल रही थी।
सीता ने
अपने मौन को ढाल बनाया,
और आत्मसम्मान को अग्नि से भी कठोर।

फिर आई अग्नि,
जो पवित्रता की नहीं,
पितृसत्ता की भाषा बोलती थी।
पुरुष की नैतिकता
राजसभा में स्वीकृत,
स्त्री की नैतिकता
अग्निकुंड में झोंकी गई।

किसी ने नहीं पूछा,
क्या आग सवालों का उत्तर होती है?
क्या विश्वास
सार्वजनिक तमाशा माँगता है?

राम की मर्यादा
राजधर्म की कुर्सी पर बैठी रही,
और सीता,
उस कुर्सी के पायों तले
अपनी गरिमा समेटती रही।

उत्तरकांड में
दर्द और गहरा हुआ।
गर्भ में भविष्य था,
बाहर समाज का डर।
राजा बच गया,
नागरिक स्त्री
फिर वन को सौंप दी गई।

पर सीता टूटी नहीं।
उनका मौन कमजोरी नहीं था,
वह वह भाषा थी
जो पुरुषों की सभा समझ न सकी।

जब उन्होंने धरती की गोद चुनी,
तो वह हार नहीं थी,
वह घोषणा थी।
एक ऐसी दुनिया का अस्वीकार,
जहाँ स्त्री
हर बार प्रमाण होती है,
और पुरुष
न्यायाधीश।

आज भी
जब किसी स्त्री से पूछा जाता है,
“तुम्हारा चरित्र क्या कहता है?”
तो सीता की अग्नि
हमारे समय में जल उठती है।

इसलिए यह कविता
आस्था के विरुद्ध नहीं,
अन्याय के विरुद्ध है।
यह रामायण को तोड़ती नहीं,
बल्कि उसके भीतर छुपे
स्त्री-सत्य को सामने लाती है।

क्योंकि धर्म वही है
जो सवालों से न डरे,
और आदर्श वही है
जो समानता के साथ चले।

सीता अब केवल कथा नहीं,
वह चेतना हैं,
जो हर उस आग से कहती है:
“मैं परीक्षा नहीं दूँगी,
अब सवाल तुमसे हैं।”



डॉ० जोनाली बरुवा

एसोसिएट प्रोफेसर
मरिधल महाविद्यालय धेमाजि, असम

वृद्ध वृक्ष का मौन विलाप

गाँव के बीच खड़ा वह वृद्ध वृक्ष
हर पीढ़ी का मूक साथी था—
लोग बदलते रहे,
पर वह वहीं रहा,
अकेलेपन में भी सबका सहारा।

उसकी छाया में
कितने ही बचपन बड़े हुए,
कितनी थकानें उतर गईं,
और कितनी ही कहानियाँ
चुपचाप उसकी शाखों में पनपती रहीं।

पर एक दिन
मनुष्य की योजनाओं में
इतिहास की कोई जगह नहीं रही।
सड़क बढ़ानी थी,
और वृक्ष को हटाना था—
बस इतना-सा कारण काफी था।

जब कुल्हाड़ी की पहली चोट पड़ी,
वह चौंका नहीं—
बस भीतर कहीं
एक बहुत पुरानी स्मृति
धीरे से टूट गई।

गिरते समय
वह किसी की तरह नहीं चिल्लाया,
बस उसी मौन में बिखर गया
जिस मौन में उसने
जीवनभर दूसरों को शरण दी थी।

उसके साथ
गाँव का एक हिस्सा भी गिर गया—
जिसका शोक
किसी ने आधिकारिक रूप से नहीं मनाया।

प्रकृति ने
उस स्थान को देर तक देखा
जैसे किसी खोए हुए अपने के लिये
मन ही मन प्रार्थना कर रही हो।

और मनुष्य...
अपनी नयी सड़क पर
तेज़ी से चल पड़ा,
बिना यह समझे
कि उसने आगे बढ़ने की जल्दबाज़ी में
अपना ही अतीत पीछे ढहा दिया है।

पानी में डूबता सूरज

शाम पानी में डूब रही है,
मैं पंछी मोहल्ले में डूब रही हूँ।
एकांत से एक गुप्त आवाज़ आती है;
चाँद तुम्हें छूने आया है,
तारे आये हैं,
आकाश की रोशनी आयी है।

मैं तुम्हें नहीं देख सकती,
मैं शाम को पक्षियों की गलियाँ भी नहीं देख सकती।

शाम समंदर में डूब रही है,
मैं अंधकार में डूब रही हूँ।



गाएगा युग : हाइकु में जीवन की धड़कन

हाइकु जापान की विश्वप्रसिद्ध काव्य विधा है, जिसमें 5 – 7– 5 वर्णों की तीन पंक्तियों में कुल 17 वर्ण होते हैं। यह विश्व की सबसे छोटी लेकिन सबसे प्रभावशाली विधा है, जो जीवन के गहरे अनुभवों को संक्षेप में प्रकट करती है। आज यह विधा भारत में भी लोकप्रिय है, और हिंदी, पंजाबी, अंग्रेजी सहित अनेक भाषाओं में साहित्यकार इस लघु विधा में लेखन कर गर्व अनुभव कर रहे हैं।

पंजाब की पवित्र भूमि मुक्तसर से संबंध रखने वाले कश्मीरी लाल चावला हाइकु विधा के समर्पित साधक हैं। वे 1995 से निरंतर हिंदी, पंजाबी और अंग्रेजी में हाइकु रच रहे हैं। उन्होंने न केवल स्वयं लेखन किया बल्कि अन्य हाइकुकारों की पुस्तकों को देशभर की लाइब्रेरियों तक पहुँचाकर इस विधा को प्रतिष्ठा दिलाने का कार्य किया।

उनका नवीन हाइकु संग्रह “गाएगा युग” (2025) भारतीय जीवन, प्रकृति, समाज और मानवीय संबंधों का सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत करता है। इस पुस्तक में प्रेम, रिश्तों की दूरियाँ, नारी जीवन की पीड़ा, ऋतुओं की छटा, और प्रकृति के संगीत की गूँज मिलती है।

कुछ प्रतिनिधि हाइकु —

* सर्दी के बीच
रजाई ओढ़ रहे
घर सदस्य
* बेटी के साथ
हर घर रोशन
जलते दीप
* समय साथ
अब रिश्तों के बीच
फासले बढ़े

इन पंक्तियों में जीवन की संवेदना और समय की विडंबना दोनों झलकती हैं।

कश्मीरी लाल चावला का विश्वास है कि “हर युग गाएगा,” क्योंकि जीवन स्वयं एक गीत है। उनकी रचनाओं में प्रकृति और मनुष्य का गहरा तादात्म्य दिखाई देता है। वर्षा की किनमिन ध्वनि, भौरों की गुनगुनाहट, तितलियों की उड़ान, और पतझड़ की उदासी — ये सब उनके हाइकु में संगीत बनकर गूँजते हैं।

“गाएगा युग” केवल एक हाइकु संग्रह नहीं, बल्कि समय,

संवेदना और संस्कृति का जीवंत दस्तावेज़ है।

कश्मीरी लाल चावला ने हाइकु को भारतीयता का रंग देकर उसे नई पहचान दी है।

आदरणीय साहित्यकारों, विद्वान अतिथियों और मित्रों, आज हम सब यहाँ एक ऐसे सृजनधर्मी कवि का स्वागत करने के लिए एकत्र हुए हैं, जिसने जापानी काव्य विधा हाइकु को भारतीय मिट्टी की सुगंध से सराबोर किया है —

वे हैं कश्मीरी लाल चावला।

हाइकु, जैसा कि हम जानते हैं, 5– 7– 5 वर्णों में जीवन की पूरी कहानी कह देता है। यह दुनिया की सबसे छोटी, किंतु सबसे गहन काव्य विधा है।

श्री कश्मीरी लाल चावला 1995 से हिंदी, पंजाबी और अंग्रेजी — तीनों भाषाओं में हाइकु लिखते आ रहे हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के साथ-साथ अन्य कवियों की पुस्तकों को कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की लाइब्रेरियों तक पहुँचाकर इस विधा को लोकप्रिय बनाया।

उनका नवीन हाइकु संग्रह “गाएगा युग” प्रकृति, प्रेम, परिवार, और समाज — सभी को एक ही सूत्र में बाँधता है।

उनके हाइकु जीवन की

गहराइयों को छूते हैं —

* “सर्दी के बीच, रजाई ओढ़ रहे, घर सदस्या”

“बेटी के साथ, हर घर रोशन, जलते दीपा”

इन पंक्तियों में सादगी है, पर संवेदना अथाह है।

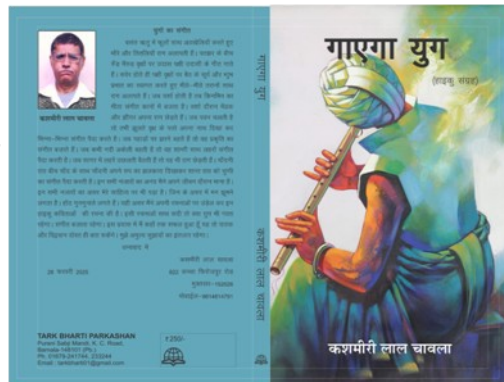
कश्मीरी लाल चावला कहते हैं —

* “हर युग गाएगा, क्योंकि जीवन स्वयं एक गीत है।”

उनकी कविताएँ हमें यह संदेश देती हैं कि प्रकृति, मनुष्य और समय — तीनों के बीच एक अविभाज्य संबंध है।

“गाएगा युग” वास्तव में भारतीय संवेदना का गीत है, जो शब्दों की सीमाओं को पार करके हमारे हृदय में गूँजता है।

मैं श्री कश्मीरी लाल चावला जी को इस उत्कृष्ट सृजन के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह युग सचमुच गाएगा — उनके शब्दों की लय में, उनकी संवेदना की गहराई में।





एक शिक्षक की आत्मकथा 'उसर में फूल'

उसर शब्द का निहितार्थ है वह भूमि, जगह या कोख जिसमें कुछ भी होने की उम्मीद ना के बराबर हो। लेकिन कभी कभार किसी असीम इच्छा शक्ति वाले इंसान के कठिन मेहनत परिश्रम लगन और दृढ़ इच्छाशक्ति के आगे उसर भूमि भी हार जाती है। इसके लिए उस इंसान को काफी कुछ झेलना पड़ता है, खोना पड़ता है। लेकिन परिणाम आगे आने वाले लोगों के लिए मिसाल बन जाता है। उसी मेहनत, परिश्रम, लगन वाले एक शिक्षक जालिम प्रसाद की आत्मकथा है पुस्तक "उसर में फूल"।

यह आत्मकथा एक तरह से कथात्मक शैली में लिखी गई लेखक के जीवन की खटे-मीठे अनुभवों का संकलन है। लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि मेरी आत्मकथा में भारतीय संस्कृति, जातीय शोषण और उत्पीड़न, बाल-श्रम, बालपन, अंधविश्वास, साहसिक कार्य, सर्वांगीय जातीय एवं पारिवारिक ईर्ष्या, घुटन, आर्थिक तंगी, मजबूरी, बेबसी, लाचारी, गरीबी एवं कठिन संघर्षों के साथ तूफानों में साहस और ऊसर में फूल खिलने के समान है। इसके साथ ही यदा-कदा जिंदगी के सुखद अनुभव भी हैं जिनको मैं अपनी आत्मकथा की कड़ियों में पिरोने की कोशिश किया हूँ। इसमें लेखक की भावनाओं, अनुभवों, संघर्षों, चुनौतियों और उपलब्धियों का विशद वर्णन है। आत्मकथा लिखने के लिए कथात्मक शैली का चुनाव लेखक की दूरदर्शिता और उद्देश्य को स्पष्ट करता है।

लेखक जालिम प्रसाद, ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उनकी आत्मकथा एक उपन्यास न होकर लघुकथाओं का संकलन है। यह कथन इस आत्मकथा की शैलीगत विशिष्टता को दर्शाता है, जिसे अद्वितीय कहा जा सकता है। यह आत्मकथा छोटे-छोटे प्रसंगों का प्रस्तुतीकरण है। आत्मकथा में जीवन के अनुभवों को छोटे-छोटे, शीर्षक-आधारित खंडों में बाँटा गया है। इसे कुल 12 खंडों में विभाजित किया गया है जिसके अंतर्गत 55 शीर्षक शामिल हैं। पहला खंड जातिगत शोषण एवं भेदभाव पर आधारित है। जैसे - पढ़ता है तो क्या सिर पर चलेगा?, पढ़-लिख कर

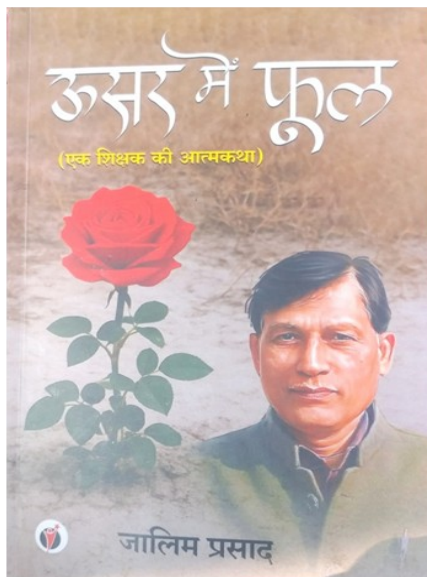
वकील थोड़े बन जाएगा ? एक शूद्र दूसरे शूद्र का दुश्मन जैसे रोचक प्रसंग को शामिल किया गया है। दूसरे खंड 'भारतीय सांस्कृतिक कमी' के अंतर्गत तीन बेटियों पर बेटा सुख, धर्म से विरक्ति, तीसरे खंड 'आर्थिक संकट-बाल श्रम' में छठी कक्षा के लिए दोना पड़ा ईट, 'शिक्षण शुल्क के अभाव में नाम कट जाना' आदि प्रसंग लेखक के अनुभव को दर्शाता है।

चौथा खंड साहसिक कार्य, पांचवा आर्थिक संकट-गरीबी, लाचारी और मजबूरी, छठा उच्च शिक्षा का अधिकार, सातवां पारिवारिक प्रकरण, आठवां संयोगवश दुर्घटनाएं, नौवां करतब, दसवां शिक्षक के रूप में, 11वां कटु अनुभव एवं अंतिम 12वां खंड 'उपलब्धियां' शामिल है।

लेखक की अपने अनुभव प्रस्तुति की यह शैली पाठक को लेखक के जीवन के प्रत्येक संघर्ष और उपलब्धियों को एक अलग और पूर्ण कहानी के रूप में ग्रहण करने का अवसर देती है। लेखक की भाषा बहुत ही सुगम और कथ्य स्पष्ट है। जीवन के यथार्थ को सीधे, बिना किसी लाग-लपेट के प्रस्तुत किया गया है। यह आत्मकथा ओमप्रकाश वाल्मीकि, तुलसी राम, मोहनदास नैमिशराय जैसे बहुजन चिंतकों, लेखकों की परंपरा में खड़ी होती है। यह भारतीय सामाजिक

व्यवस्था के स्याह पक्ष प्रामाणिक रूप से स्पष्ट करता है।

लेखक ने अपनी आत्मकथा में कठिन संघर्षों और खटे-मीठे अनुभवों का समावेश किया है, जो इसकी विषय-वस्तु को अत्यंत समृद्ध बनाते हैं। इसमें जातिगत शोषण के कई उदाहरण हैं, जैसे 'पढ़ लिखकर वकील थोड़े बन जाएगा?' जैसे ताने हैं साइकिल और रजाई-गद्दा रखने पर ईर्ष्या और धमकी तक दी जाती है। छोटी जाति का होने के कारण क्लास मॉनीटर न बन पाना लेखक के बालपन के मन को कटुता से भर देता है। शूद्रों के बीच भी छुआछूत का चलन जैसे मुद्दे को बेबाकी से उठाया गया है। लेखक का बचपन और किशोरावस्था शारीरिक और मानसिक शोषण तथा अभाव में बीता था। इसमें शिक्षण शुल्क के अभाव में नाम कट जाने और रात में पढ़ने के लिए मिट्टी के तेल की



कमी जैसे मार्मिक प्रसंग हैं दलित जीवन के घोर अभाव और मानसिक विषाद को दिखाया है। लेखक को भूत का भय और बोर्ड परीक्षा में पास होने के लिए खीर भोजन की मनौती जैसे अंधविश्वासों से भी जूझना पड़ा, जहाँ उन्होंने हिम्मत और साहस से काम लिया। कुल मिलाकर, 'ऊसर में फूल' अपनी अद्वितीय शैली लघुकथाओं का संकलन और दलित जीवन के यथार्थ, संघर्ष, और चेतना के गहन चित्रण के कारण दलित साहित्य की परंपरा में एक सशक्त और यादगार कृति है।

इसमें लेखक के बचपन से लेकर युवावस्था और सरकारी सेवा से अवकाश ग्रहण तक के अनुभवों, जातीय शोषण और उत्पीड़न के खट्टे-मीठे यादों विस्तृत वर्णन है। आत्मकथा का केंद्रीय संदेश डॉ. भीमराव आंबेडकर के त्रि-सूत्रीय नारे 'शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो' पर आधारित है। लेखक ने शिक्षा और जागरूकता के बदौलत ही गरीबी, अंधविश्वास और जातिगत अवरोधों को ध्वस्त किया। लेखक का जीवन 'तुफानों में साहस और ऊसर में फूल खिलाने के समान है'। उन्होंने बिना रिश्तत और सिफारिश के, केवल आरक्षण नहीं बल्कि अपनी योग्यता के आधार पर प्राथमिक शिक्षक से सेवा शुरू कर, व्याख्याता और कार्यवाहक उपप्राचार्य तक का शानदार उपलब्धि हासिल की। यह कृति वर्तमान और भविष्य की पीढ़ी को यह विश्वास दिलाती है कि 'मंजिल के मार्ग में गरीबी, अंधविश्वास और जाति बाधक नहीं है। कठोर परिश्रम एवं सतत प्रयास से जिंदगी में कुछ भी हासिल किया जाना नामुमकिन नहीं है।

अंत में बस इतना कहूंगा आत्मकथा 'ऊसर में फूल' सामाजिक विद्रूपताओं उजागर करता एक ऐसा संस्मरणात्मक दस्तावेज है, जो शिक्षा के माध्यम से प्राप्त हुई सामाजिक-आर्थिक मजबूती एवं संवैधानिक हक की प्राप्ति की गाथा है। जिसे प्रत्येक दबे-कुचले लोगों तक पहुंचाने की जरूरत ताकि वे अपने जीवन में बदलाव लाने के लिए समुचित प्रयास शुरू कर सकें।

समीक्षक- गोपेंद्र कु सिन्हा गौतम

पुस्तक: ऊसर में फूल

लेखक: जालिम प्रसाद

प्रकाशक: स्वतंत्र प्रकाशन, दिल्ली

कुल पृष्ठ -150

मूल्य-300



टीकम चन्दर ढोडरिया

अधिवक्ता, छबड़ा जिला बाराँ राजस्थान



कुण्डलिया-छन्द

लगते थे प्यारे बहुत, बचपन के दिन रात।
मित्रों के सँग खेलना, करना मीठी बात।
करना मीठी बात, दौड़ बगिया में जाना।
जामुन इमली आम, तोड़ कच्चे ही खाना।
कह "चन्दर" कविराय, लोग सब सच ही कहते।
सबको सबसे श्रेष्ठ, दिवस बचपन के लगते।।

*

आओ बचपन में चलें, उसी सुहाने गाँव।
बहती थी नदिया जहाँ, थी पीपल की छाँव।
थी पीपल की छाँव, धेनुएँ जहाँ रँभाती।
करते नर्तन मोर, गीत नव कोयल गाती।
कह "चन्दर" कविराय, क्लेश सब दूर भगाओ।
कुछ पल आँखें मूँद, चलें बचपन में आओ।

*

आते याद हमें बहुत, बचपन के दिन आज।
मित्रों के सँग घूमना, यहाँ वहाँ बिन काज।
यहाँ वहाँ बिन काज, बैठ कर गप्प लगाना।
जाना नदिया दौड़, और फिर खूब नहाना।
कह "चन्दर" कविराय, कभी ना भूले जाते।
बचपन के दिन याद, सदा हमको हैं आते।

*

करते बच्चों पर बहुत, हम सब अत्याचार।
जाते हैं स्कूल वे, रोज उठाये भार।
रोज उठाये भार, पीठ बस्ते का भारी।
डगमग करते पाँव, सफ़र है फिर भी जारी।
कह "चन्दर" कविराय, कष्ट वे नित ही सहते।
बचपन उनका छीन, ठीक क्या हम हैं करते।

*

मुस्कायें बालक सदा, ज्यों बगिया में फूल।
निर्मित हो वातावरण, उनके ही अनुकूल।
उनके ही अनुकूल, करें अब शीघ्र प्रबंधन।
पायें शिक्षा ज्ञान, स्वस्थ हों उनके तन-मन।
कह "चन्दर" कविराय, व्यवस्था ऐसी लायें।
बच्चे रहें प्रसन्न, फूल से वे मुस्कायें।



प्रेम के अंतराल

अमित कुमार मल्ल का प्रथम उपन्यास “प्रेम के अंतराल” समकालीन युवा जीवन, महानगरीय संघर्ष और प्रेम संबंधों की जटिलताओं को केंद्र में रखकर लिखा गया एक संवेदनशील रचना है। लेखक ने ‘मेरी बात’ में स्पष्ट किया है कि यह उपन्यास आज के वर्किंग युवाओं की दुनिया, उनके सपनों, असफलताओं, ब्रेकअप, करियर और जीवन की उलझनों को समेटे हुए है। इस दृष्टि से यह उपन्यास केवल प्रेमकथा नहीं अपितु बदलते सामाजिक ढांचे का दस्तावेज़ भी है। शीर्षक “प्रेम के अंतराल” अपने भीतर एक गहरी अर्थच्छाया समेटे हुए है। क्योंकि ‘अंतराल’ केवल दूरी नहीं, वह समय का वह रिक्त खंड है जिसमें संबंध स्वयं को परखते हैं, टूटते हैं, बिखरते हैं और फिर किसी नई संरचना में पुनः संयोजित होते हैं।

कथानक का केंद्र मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि से आया अर्जुन और उच्चवर्गीय परिवेश में पली मायरा हैं। रेवाडी से दिल्ली पहुँचा अर्जुन अपने भीतर संकोच, हिचक और आत्मविश्वासहीनता का बोझ लिए है, जबकि मायरा महानगरीय खुलापन और आत्मविश्वास का प्रतीक बनकर उभरती है। कॉलेज परिसर में दोनों की पहली भेंट केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं बल्कि दो ‘संस्कार-धाराओं’ का संवाद है। उपन्यास की शुरुआत अर्जुन के दिल्ली टेक्नोलॉजिकल इंस्टिट्यूट में प्रवेश से होती है। फिर कॉलेज जीवन, क्लब संस्कृति, करियर की होड़ और फिर प्रेम का अंकुर-इन सबके बीच कहानी धीरे-धीरे परिपक्व होती है। मायरा एक जगह कहती है कि “लेकिन कॉलेज सिर्फ पढ़ाई के लिए नहीं है। यहाँ तुम वो बनते हो, जो तुम ज़िन्दगी में बनना चाहते हो।” यह संवाद उपन्यास का वैचारिक आधार प्रस्तुत करता है कि शिक्षा केवल डिग्री नहीं अपितु व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया है।

उपन्यास का कथानक बारह अध्यायों में ऋतुओं की भाँति बदलता है। जाड़े की शुरुआत से लेकर उमस भरी गर्मी और फिर पहाड़ों की सैर तक, प्रेम की मनःस्थितियाँ प्रकृति के साथ लयबद्ध होती चलती हैं। यहाँ देशकाल का ताना-बाना भी महत्वपूर्ण है दिल्ली का शैक्षिक वातावरण,

गुडगाँव का कॉर्पोरेट परिवेश, बंगलुरु की पेशेवर व्यस्तता और सिंगापुर का अंतरराष्ट्रीय विस्तारये सभी मिलकर आधुनिक युवा जीवन का भौगोलिक विस्तार रचते हैं। लेखक ने आधुनिक प्रेम के यथार्थ को बिना आडंबर के चित्रित किया है। लिब-इन रिलेशन की चर्चा पर अर्जुन का द्वंद्व “अर्जुन को विचार अच्छा लगा, लेकिन साथ ही डर भी लगा...” यह पंक्ति छोटे शहर की मानसिकता और महानगरीय सोच के बीच खिंची रेखा को स्पष्ट करती है। इसी प्रकार दूरी और तकरार के प्रसंगों में “तो मैं क्या तुम्हें फोन न करूँ?” जैसे संवाद प्रेम की असुरक्षा और अधिकार-बोध दोनों को उभारते हैं। ब्रेकअप का प्रसंग आधुनिक

संबंधों की अपरिहार्यता बनकर उभरता है मसलन, “मैं ब्रेक की बात नहीं कर रही... मैं ब्रेकअप की बात कर रही हूँ।” यहाँ लेखक ने किसी एक पक्ष को दोषी नहीं ठहराया; बल्कि संबंधों के भीतर पनपती अहं, असुरक्षा और असंतोष की धुँध को पाठक के सामने रखा है। अर्जुन का शिखा के फ्लैट पर जाना और मायरा का जेम्स के साथ संबंधये प्रसंग नैतिकता की पारंपरिक कसौटी पर प्रश्नचिह्न खड़े करते हैं। किंतु लेखक इन घटनाओं को सनसनी की तरह नहीं अपितु भावनात्मक रिक्तता की परिणति के रूप में प्रस्तुत करता है।

पात्र-चित्रण की दृष्टि से अर्जुन और मायरा दोनों बहुआयामी हैं। अर्जुन में

संकोच, संवेदना और आत्मग्लानि है, तो मायरा में आत्मविश्वास, आवेग और स्वतंत्रता की आकांक्षा। अन्य सहायक पात्र मसलन, शिखा, आदित्य, विक्रम, नेहा और जेम्स इत्यादि कथानक को आगे बढ़ाने के साधन मात्र नहीं अपितु नायक-नायिका की मनःस्थितियों को और सघनता प्रदान करते हैं।

भाषा-शैली सरल, संवादप्रधान और प्रवाहमयी है। कहीं-कहीं लोक-भाषा की छाया भी दिखाई देती है, जो कथा को यथार्थ से जोड़ती है। लेखक की भाषा में अनावश्यक अलंकरण नहीं; बल्कि सहज अभिव्यक्ति है। उदाहरणस्वरूप “खुद का ख्याल रखना, मिस्टर लड्डू।” यह संबोधन ही अर्जुन के प्रति मायरा के स्नेह और आत्मीयता



का प्रतीक बन जाता है। उपन्यास का उद्देश्य केवल प्रेम-कथा कहना नहीं, बल्कि आधुनिक संबंधों की जटिलताओं को उद्घाटित करना है। यह दिखाता है कि पाश्चात्य जीवन-शैली और भारतीय संस्कारों के बीच युवा मन कैसे झूलता है। लेखक न तो परंपरा का अंध-समर्थन करते हैं, न आधुनिकता का अंध-विरोध। अंततः जब 2025 में दोनों अपने जीवन में संतुलन बना लेते हैं और साथ रहने का निर्णय लेते हैं तो यह संतुलन 'अंतराल' की अग्निपरीक्षा से गुजरकर प्राप्त हुआ है। ऐसे में शीर्षक की सार्थकता यहीं स्पष्ट होती है कि प्रेम के बीच आए अंतराल ही उसे परिपक्व बनाते हैं। बिना दूरी, बिना विराम, प्रेम केवल आकर्षण रह जाता लेकिन अंतराल उसे आत्मबोध और पुनर्मूल्यांकन का अवसर देता है।

समकालीन भारतीय समाज तीव्र शहरीकरण, तकनीकी विस्तार और प्रतिस्पर्धी वातावरण से गुजर रहा है। ऐसे में रिश्तों की प्रकृति बदल रही है। उपन्यास इस परिवर्तनशील समाज का दर्पण है। महानगरीय जीवन का दबाव, स्त्री की आत्मनिर्भरता, डिजिटल रिश्तों की विडंबना, छोटे शहर बनाम महानगर ऐसे तमाम पक्षों कि तरफ उपन्यास यह संकेत देता है कि बदलते समाज में प्रेम को बचाने के लिए केवल भावुकता नहीं अपितु परिपक्वता आवश्यक है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए एक प्रश्नसहज मन में उठता है कि क्या 'प्रेम के अंतराल' आधुनिक शहरी जीवन में 'करियर-केन्द्रियता' के कारण उत्पन्न भावनात्मक शून्यता की ओर संकेत करता है? इसके समाधान को अमित कुमार मल्ल ने बड़ी सहजता एवं सरलता से इस उपन्यास के कलेवर में संपूत किया है कि आज का युवा वर्ग करियर और आत्मनिर्भरता की दौड़ में भावनात्मक समय खोता जा रहा है। अर्जुन और मायरा का संबंध इस द्वंद्व का प्रतीक है। दोनों अपने-अपने क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहते हैं, परन्तु व्यस्तता उनके संवाद को कम करती है। साथ ही उपन्यास यह भी संदेश देता है कि 'प्रेम' केवल साथ रहने का नाम नहीं अपितु समझ, धैर्य और संवाद का भी नाम है। यदि समय और संवेदना का संतुलन न हो, तो संबंधों में 'अंतराल' बढ़ते जाते हैं।

समग्रतः "प्रेम के अंतराल" आधुनिक युवा मन की संवेदनात्मक यात्रा है। इसमें प्रेम है, वियोग है, नैतिक द्वंद्व है, और अंततः संतुलन की खोज है। सौ पृष्ठों का यह उपन्यास पाठक को एक ही बैठक में बाँध लेने की क्षमता रखता है। लेखक की यह कृति समकालीन प्रेम-साहित्य में एक सार्थक योगदान के रूप में देखी जा सकती है क्योंकि यह प्रेम को न तो पौराणिक आदर्श में बाँधती है, न ही केवल देह के उत्सव तक सीमित करती है अपितु उसे समय और अंतराल की कसौटी पर कसकर प्रस्तुत करती है।

उपन्यास: प्रेम के अंतराल

लेखक: अमित कुमार मल्ल

प्रकाशक: बोधि प्रकाशन

मूल्य: ₹ 160 (पेपर बैक)

वसंत जमशेदपुरी

मानगो, जमशेदपुर
झारखंड-831012



वासंती कुंडलियाँ

उपवन में मधुमास ने, बिखराया है रंग।
लगे फाग गाने भ्रमर, बजा-बजा कर चंग।
बजा-बजा कर चंग, खूब हुड़दंग मचाते।
छू कलियों के गाल, प्रीति के गीत सुनाते।
कह वसंत कर जोड़, देख मस्ती कानन में।
अवगुंठन से झाँक, रहीं कलिया मधुवन में।

*

कोकिल ने की घोषणा, लख रसाल के फूल।
रथ आया कंदर्प का, मन-सरवर के कूल।
मन-सरवर के कूल, ईख का धनुष निराला।
लिए पुष्प-शर हाथ, करे जग को मतवाला।
कह वसंत कर जोड़, हृदय को करता चोटिल।
लो आया मधुमास, कूक कर कहती कोकिल।

*

पतझड़ के आए बिना, आता नहीं वसंत।
ज्यों वियोग लाता सदा, मधुर-मिलन हित कंत।
मधुर-मिलन हित कंत, ग्रीष्म लाता है सावन।
रजनी लाती प्रात, लगे सबको मनभावन।
कह वसंत कर जोड़, नहीं कुछ इसमें गड़बड़।
ऋतुपति का संदेश, सदा लाता है पतझड़।





मानवीय संवेदनाओं की रचनाएं--'शब्द शाश्वत हैं'

रचनाकार कवि व चिकित्सक डॉ अखिलेश शर्मा विगत 50 वर्षों से लगातार साहित्य सृजन कर रहे हैं, और राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कवितायें, हाइकु, गीत, गजल, व्यंग्य अथवा चिकित्सा संबंधी लेख आदि निरंतर ही प्रकाशित होते रहते हैं। कोई बड़ा पुरस्कार भले ही उनके नाम नहीं हो किन्तु विभिन्न साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा उन्हे समय-समय पर सम्मानित किया जाता रहा है। पेशे से वे एक सफल शिशु-रोग चिकित्सक हैं और शायद यही कारण है कि उनके शिशु-सम सरल हृदय में साहित्य-सृजन की तरंगें भी हिलोरे लेती रहती हैं।

अभी हाल ही प्रकाशित उनकी प्रथम कृति “शब्द शाश्वत हैं” पुस्तक में उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों और रंगों को आधार बनाकर कुल 101 कविताएं प्रस्तुत की हैं, संग्रह में कुछ तुकांत तो कुछ अतुकांत कवितायें हैं, साथ ही गीत, गजल, मुक्तक और हाइकु भी है। डॉ अखिलेश की पुस्तक का शीर्षक आकर्षक भी है और सत्य भी क्योंकि जैसे हमारा ब्रह्मांड शाश्वत है वैसे ही हमारे शब्द भी शाश्वत होते हैं। विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि हमारे द्वारा कहा गया एक-एक शब्द ब्रह्मांड में सदैव के लिए स्थापित हो जाता है। श्री संदीप राशिनकर का आवरण चित्र पुस्तक के शीर्षक के अनुरूप शीर्षक को सार्थकता प्रदान करता है।

जब आप डॉ अखिलेश शर्मा का यह कविता संग्रह पढ़ेंगे तो आप पाएंगे कि डॉक्टर सा. कितने संवेदनशील, गंभीर, चिंतनशील, दार्शनिक और सरल हैं। उनकी कविताओं में समाज की समस्याओं का खुलासा और चिंता है तो राजनीति पर प्रहार भी, वे संस्कृति के पतन पर भी लिखते हैं तो वैश्विक हिंसा की त्रासदी पर भी कलम चलाते हैं। यही नहीं जीवन-दर्शन, प्रेम और प्रकृति तथा ईश्वर भक्ति पर भी उनकी कलम ने श्रेष्ठ कविताओं की

रचना की है।

पुस्तक की भूमिका में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ पद्मासिंह ने बिलकुल सही लिखा है “डॉ अखिलेश शर्मा का प्रस्तुत काव्य-संग्रह अंतरात्मा की एक ऐसी यात्रा है, जिसमें जीवन, प्रेम, दर्शन और प्रकृति अपने मोहक रूपों में प्रकट हुए हैं।”

यदि आप केवल बड़ा नाम देखकर कविता पढ़ने का शौक रखते हैं तो बात अलग हैं, अन्यथा डॉ अखिलेश शर्मा के इस संग्रह में भी भाषा, व्याकरण, भाव और शिल्प के आधार पर अत्यंत सुघड़, सुंदर और पठनीय कवितायें प्रस्तुत की गई हैं।

संग्रह की प्रथम कविता “शब्द और पंचतत्व” को शीर्षक कविता भी कहा जा सकता है क्योंकि इस कविता में शब्द को ना केवल जीवन निरूपित किया गया है बल्कि बड़े ही सुंदर शब्दों में जीवन के लिए आवश्यक पंचतत्व भी दर्शाया गया है –

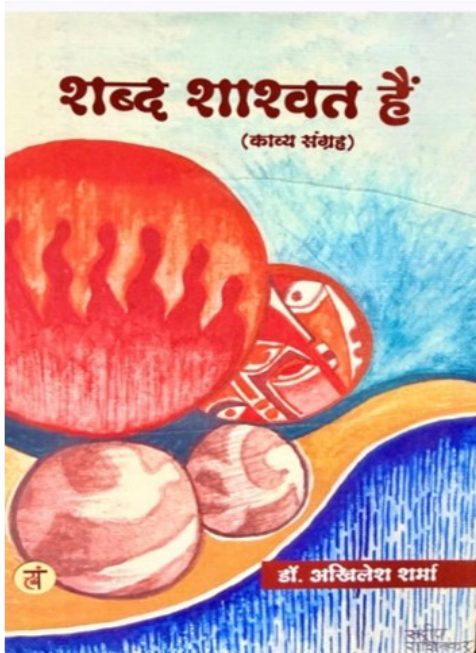
'शब्द जीवन हैं/ शब्द तैरते हैं हवा में/ ऑक्सीजन बनकर/ शब्द प्राण वायु हैं!

शब्द ब्रह्म हैं/ शब्द विचरण करते हैं/ नभ में, अन्तरिक्ष में/ लयबद्ध!'

जीवन दर्शन पर आधारित संग्रह की कवितायें 'जीवन एक सागर', 'क्यों', 'हे ईश्वर', 'जीवन', 'मुसाफिर', 'हारेगा तम', 'नफरत का जहर हटा', निरंतर कर्म है कर्तव्य', और 'आदमी' भी बहुत प्रभावी कवितायें हैं।

चूंकि डॉ अखिलेश एक चिकित्सक भी हैं और उन्होंने कोरोना काल में आदमी के जीवन-संघर्ष को और इस त्रासदी को बहुत नजदीक से देखा है इसीलिए वे लिख सके कि –

'दीन-दुखी की अरज सुनो रे/ सीधी-सादी डगर चलो रे मानव जाति पर आई विपत्ति/ एक-दूजे की मदद करो रे!'
एक और कविता 'हे समर्पित योद्धा' में कहते हैं –



“जीतेगी इंसानियत फिर एक जंग/ जिंदगी में भरकर हर एक रंग”।

देशवासियों में आपसी भाईचारा, प्रेम और सामंजस्य स्थापित करने के लिए कविता “बहा दो प्रेम की नदियां” अमन और शांति का संदेश देती बहुत ही सशक्त कविता है –

‘करो सब बात मिल-जुल कर/ कि कोई मसला न रह जाए
बहा दो प्रेम की नदियां/ कि पानी ठहरा न रह जाए’

समाज में व्याप्त विषमताओं पर भी उनकी संवेदनशील कलम खूब चली है। ‘किस तरह की बेबसी है’, ‘जिंदगी पृच्छ रही’, ‘शहर एक सवाल’, ‘शहर में’ आदि कवितायें कवि के मानवीय सरोकारों की ओर इंगित करती हैं, वहीं “प्रश्न?प्रति प्रश्न??” में दुखी होकर वे लिखते हैं – भूखे पेट की सलवटें/ भवनों में बिछी/ कालीनों की सलवटें?

मदहोश चुनिन्दा लोग/ सड़क किनारे/ बुलबुलाती करवटें/ कैसी विडम्बना है? ’

कवि युद्ध की विभीषिका से भी आहत है इसीलिए “युद्ध! युद्ध!” में दुनिया को सचेत करते हुए लिखा है –

‘बहुत हो गया/ बंद करो अब/ तांडव मौत का/ खत्म करो सब/ विश्व हो रहा है बीमार’

नकारात्मकता के इस दौर में कवि आशावादी भी है, संग्रह में ‘गलत क्या है’, समंदर जब ना समझे’, ‘दीप उजाले के’ आदि आशावादी दृष्टिकोण वाली अच्छी कवितायें हैं और ‘हर्ष की वीणा बजाएँ’ में तो उन्होंने लिखा है –

‘दुख भुलाकर हम सभी गमजदों का/ हर्ष की वीणा बजाएँ, हर्ज क्या है?

हैं विपैली सब तरफ बहती हवाएँ/ पेड़ चन्दन के लगाएँ, हर्ज क्या है? ’

संग्रह में कवि ने स्त्री-विमर्श पर भी बहुत प्रभावशाली कवितायें रची हैं, बेटी, स्त्री और संतुष्टि, नदी और स्त्री, आदि कविताओं में जहां नारी का सहज और सौम्य सौंदर्य का वर्णन किया गया है तो वहीं ‘भटक रही है युवा पीढ़ी’ और ‘संस्कार’ में उन्होंने युवा पीढ़ी और नारी की विकृत मानसिकता को भी उभारा है।

कई कवितायें हैं जिनमें डॉ अखिलेश का प्रकृति प्रेम भी झलकता है। प्रकृति के रंगों को भी कवि ने बड़ी ही खूबसूरती से शब्दों में पिरोया है – इंद्रधनुष, ऋतुराज, परिंदे, वह नदी ही तो है, इंद्रधनुष के रंग की लकीर, गंध बांटने चला, खुशनुमा बसंत, बूंदें, एक नदी, मौसम के संग, झिलमिलाता सूरज, स्वर्णिम धूप, अमृत वर्षा आदि कविताओं में निसर्ग की रमणीयता और सौंदर्य को महसूस किया जा सकता है।

कवि ने ‘रोशनी को लूटने वालों’, ‘भ्रष्टाचार मंत्र को जपकर’, ‘चाटुकारिता गूढ मंत्र है’, ‘भ्रम न पाले’, ‘भ्रष्ट आचरण धारण करके’ आदि कविताओं के माध्यम से राजनैतिक विषयों पर भी धारदार कलम चलाई है। इसके

अतिरिक्त डॉ अखिलेश शर्मा ने अपने इस संग्रह में हनुमान चालीसा को हाइकु में प्रस्तुत कर जो नवाचार किया है वह भी अत्यंत अनूठा, प्रभावी और प्रशंसनीय है।

कवि ने अपने संग्रह में क्लिष्ट शब्दावली का कम से कम उपयोग किया है उसके स्थान पर सामान्य से सामान्य पाठक के समझने योग्य हिन्दी-शब्दावली प्रयोग की गई है। यही कारण हैं कि उनकी ये कविताएं हर वर्ग के पाठक को पसंद आएंगी।

कृति - “शब्द शाश्वत हैं”

रचनाकार – डॉ अखिलेश शर्मा

प्रकाशक – संस्मय प्रकाशन ,दिल्ली

पृष्ठ -140, मूल्य – रु 375/-

हाइकु

1)खिले सुमन

महकें बिखेरते

बसंत बीच

2)यादें पुरानी

पुराने वृक्षों साथ

ताजी हो गई

3)इच्छा रहती

प्रमात्मा को मिलने

बीता जीवन

4)जलता रहा

रात अकेला दीप

देता पहरा

5)फूल खिलते

महकती बगीची

भैरे नाचते

6)स्मृति आईना

देख रहा जीवन

बीता जीवन

7)उनकी याद

आ रही हिचकियाँ

दिल मे प्रेम

8)हाउँका आया

शायद वो ही आएँ

वह ना लौटे

9)मुस्कराते फूल

अंकुर फूट रहे

सजी बगीची

10)हम देखते

चाँद सूरज दूर

पास ना आते

कश्मीरी लाल चावला

संपादक अदबी माला मुक्तसर 152026





राहतों के नाम पर बेचैनियां: मौजूदा मसअलों से गुज़रती हुई ग़ज़ल

ग़ज़ल लेखन में महिलाओं की संख्या अब कम नहीं है, और ऐसा भी नहीं है कि इन महिलाओं की ग़ज़लें ग़ज़ल के तकाज़े पर खड़ी नहीं उतर रही हैं। इन महिला ग़ज़लकारों में एक नाम अनामिका सिंह का भी है। हिंदी के अनेक ग़ज़लकारों की तरह वह भी गीत और नवगीत से ग़ज़ल के क्षेत्र में आई हैं। लेकिन उन्होंने ग़ज़ल में जिस तरीक़ीब और तरीक़ीब का ख्याल रखा है, इससे उनकी शायरी में पुख्तगी का पता चलता है। अपनी ग़ज़ल की भूमिका लिखते हुए उन्होंने उन बेचैनियों का ज़िक्र किया है, जिसे हम देखकर लगातार नज़र अंदाज़ करते रहे हैं। यह भूमिका स्त्री विमर्श के लिए एक बहस पैदा करती है। उनका वाजिब प्रश्न है कि जब भीड़ में स्त्रियों की हत्या हुई, बंद कमरे में हत्या हुई घर वालों के बीच मार डाली गई, ससुराल मायके में मारी गई। प्रेम के नाम पर मारी गई। गली में फेंक दी गई। दफना दी गई। उसके चरित्र पर झूठे सच्चे इल्ज़ाम लगाये जाते रहे, लेकिन हम यूँ खामोश रहे जैसे कुछ हुआ ही नहीं। वह मानती हैं कि जिन सदमों से हमारी आंखें भीग जाती थी, अब यह ढीठ हो गई हैं। ज़ाहिर है यह तमाम समस्याएं उनकी ग़ज़लों का मौजूब बनती हैं।

अपनी ग़ज़लों के बारे में उन्होंने कहा भी है कि हमने जो देखा सुना और महसूस किया। वह इन ग़ज़लों का कहन बनकर सामने आया है। हिंदी ग़ज़ल के आलोचक विजय कुमार सिंह की मानें तो अनामिका की ग़ज़लें दर्द की जगहों को पहचानती हैं।

उनकी ग़ज़लें हमें किसी प्राचीन मसअलों की तरफ़ नहीं ले जातीं। उन्हें पता है कि मौजूदा समस्याओं का सुलझ जाना ही फ़िलवक़्त काफ़ी है। वह अपनी ग़ज़लों में एक साहसी स्त्री की तरह पेश आती हैं। हम जिन समस्याओं पर चुप रहना ज़रूरी समझते हैं, वो उन समस्याओं पर खुलकर बोलने की हिम्मत रखती हैं-

इस आस्था के नाम पे क्या-क्या नहीं हुआ

जो भी हुआ ये जान लें अच्छा नहीं हुआ

और फिर इसका अगला ही शेर मनुष्यता के

नाम पर प्रश्न खड़ा करता है -

छह औरतों को रौंद दिया एक कार ने

लेकिन हुज़ूम में कोई जिंदा नहीं हुआ

विस्थापन हमारी एक त्रासदी है। रोज़गार की तलाश उसे अपने वतन से बाहर कर देती है। अनामिका सिंह कहती हैं -

मर्ज़ी से कभी खुद की पलायन नहीं करता

बर्बाद कोई शौक से यौवन नहीं करता

ईश्वर ने जैसे स्त्री और पुरुष की रचना की। ठीक वैसे ही उसने किन्नर भी बनाया। लेकिन सिर्फ़ शारीरिक रचना के कारण हमारा उसके प्रति अनादर का भाव है, पूरी हिंदी ग़ज़ल में किन्नर को अपनी ग़ज़ल का मौजूब बनाने वाली वह अकेली शायरा हैं। यहां तक कि एक पूरी ग़ज़ल उन्होंने किन्नर पर लिखी है। एक दो शेर देखें -

सबने देखे हैं नाचते किन्नर

नहीं देखे तो बस थके किन्नर

कितने खाली हैं देते गली हम

पर दुआओं से हैं भरे किन्नर

वह ज़माने के सच और रुदाद को व्यक्त करने वाली शायरा हैं। हर दौड़ में सच बोलने वाला इंसान अकेला रह जाता है। चाहे वह सुकरात हों, यीशु मसीह या महात्मा गांधी। ग़ज़ल की यह खूबी है कि उसका एक शेर पूरी कायनात को रख देता है-

जितने भी यहां दोस्त थे प्यारे निकल गये

हमको ज़मीन पे छोड़ के सारे निकल गये

उनकी ग़ज़लों में एक प्रवाह है,

लोच है, गति है, मिज़ाज है, शैली है,

अर्थ की गंभीरता है, सादगी है। इनकार

है। उनकी ग़ज़लों का वह जादू है जो

पढ़ते ही हमें अपना शैदाई बना लेता है -

बेवजह जो बात पाली जाएगी

वो नहीं हमसे संभाली जाएगी

कहना ना होगा कि संग्रह की सारी ग़ज़लें इसलिए हमें मुतासिर करती हैं कि इसमें कसावट और सजावट तो है ही, इसमें व्यक्त बातें भी हमारी जिंदगी से जुड़ी हुई हैं। पाठकों को यह पुस्तक पढ़ते हुए ग़ज़ल के माधुर्य नाज़ुकी का पता चलेगा।

राहतों के नाम पर बेचैनियां

शायरा -अनामिका सिंह

वर्ष -2025, मूल्य -499, पृष्ठ -199

श्वेतवर्णा प्रकाशन, नोयडा

दादू दयाल



मीठे मीठे करि लीये, मीठा माहें बाहि।
दादू मीठा हवै रह्या, मीठे मांहि समाइ॥
भँवर कँवल रस बेधिया, सुख सरवर रस पीव।
तह हंसा मोती चुणै, पिउ देखे सुख जीव॥
दादू रांम सँभालिये, जब लग सुखी सरीर।
फिर पीछैं पछिताहिगा, जब तन मन धरै न धीर

मानवी सेवा संस्था : राष्ट्र और राष्ट्र जन की सेवा में समर्पित

274/x ,शक्तिनगर कालोनी ,आरोग्य मंदिर ,गोरखपुर -273003

<http://www.manvipatrika.co.in>

(पत्रिका यहाँ से भी पढ़ सकते है)